श्री परमात्मनेनमः श्री भगवदात्मनेनमः

॥ श्री परम पारिणामिक भावायनम ॥

श्री

* गुणस्थान *

लेखक व प्रकाशक

ब्रह्मचारी मूलशंकर देशाई

चाकसू का चौक, जयपुर (राजस्थान)

मोक्ष सप्तमी, वीर सं० २४८२ विक्रम स० २०१३

प्रथमावृत्ति २००० | मुद्रक जनता प्रेस, प्रतापपुरा, आगरा | मूल्य एक रुपया

हमारे प्रकाशन

भेदज्ञान	....	....	२)
पंचलब्धि	...	....	१|||)
तत्वार्थ सूत्र सटीक	...	....	१|)
जिन सिद्धान्त	....	..	१)
गुणस्थान	....	....	१)
दृष्टिदोष	....	....	||-)
तत्त्वसार	..	...	|=)
जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	...	....	|-)
निमित्त	....	....	=)
पंचभाव	...	....	=)
गुरू का स्वरूप	...	....	=)
देव का स्वरूप तथा भक्ति		...	-)
शास्त्र का स्वरूप	....	....	-)
योगसार पद्यानुवाद	...	....	-)

नीचे लिखी तीनों पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रेस में छप रहा है।

(१) तत्त्वसार (२) दृष्टि दोष (३) पंचलब्धि

मिलने का पता:—

जैन दर्शन विद्यालय

चाकसू का चौक, जयपुर (राजस्थान)

दो शब्द

वतमान में तत्वोपदेश का प्राय लोप सा हो गया है। द्रव्यानुयोग तथा करणानुयोग की महिमा नही रही अपितु बाह्य क्रियाकाण्ड पर ही दृष्टि है जिसको यह आज्ञानी जीव चरणानुयोग मान कर बैठा है। जिनागम में चार अनुयोग माने गए हैं। सब अनुयोग अलग-अलग अपेक्षा से कथन करते हैं। यदि सब अनुयोग एक ही अपेक्षा से कथन करें तब तो चारों अनुयोगो का प्राय नाश हो जावेगा। अत किस अनुयोग का अमुक कथन है यदि इसका भी इस आत्मा को स्पष्ट ज्ञान न होवे तो स्वाध्याय करते हुए भी यह जीव मिथ्यादृष्टि का मिथ्यादृष्टि ही रहता है।

करणानुयोग नोकर्म को साधक बाधक नही मानता परन्तु द्रव्य कर्म को ही बाधक मानता है। छद्मस्थ जीवों में प्रथम भाव की उत्पत्ति होती है तत्पश्चात् क्रिया होती है—यह नियम है। पचलब्धि आदि शास्त्रों में हमने लिखा है कि "जब तीर्थङ्करदेव ससार से उदासीन होते हैं तब ही उनका सातवा गुणस्थान रूप भाव हो जाता है"। तदुपरान्त ही लोकान्तिक देव तथा इन्द्रादि अपने नियोग रूप का व्यवहार करते हैं अर्थात् तपकल्याणक मनाते हैं यहबात करणानुयोग की अपेक्षा से लिखी गई है परन्तु जिन लोगों को अनुयोग तथा अपेक्षा का ज्ञान नही है वे ही विरोध करते हैं कि वस्त्र सहित मुनि कैसे हो सकता है, यह तो श्वेताम्बर आम्ना की मान्यता है किन्तु यदि धर्म बुद्धि है तो पत्र व्यवहार द्वारा सर्व प्रथम लेखक से शंका समाधान करना चाहिए। लेखक यदि उत्तर न दे केवल तब ही विरोध करना उचित है। परन्तु पूछना

किसको है? देखिए ये दो गाथाएं जिनागम की हैं—इनका अर्थ किसी विशेष ज्ञानी से पूछिये —

गाथा (१) क्षयोपशम सम्प्राप्त प्रशस्त सज्वलनोदय ।
लब्धबोधि सुतं राज्ये निजे संयोज्य सुप्रभम् ॥

अर्थ—कर्मों के क्षयोपशम से भगवान् नमिनाथ को प्रशस्त सज्वलन का उदय हुआ अर्थात् प्रत्याख्यानावरण अप्रत्याख्यानावरण का उपशम होगया और रत्नत्रय को पाकर उन्होंने सुप्रभ नाम के अपने पुत्र को राज्य का भार सोपा॥

गाथा (२)
भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंग जिणाणाए ॥

अर्थ—पहिले मिथ्यातादि दोषों को छोड़ भाव पूर्वक अन्तरङ्ग नग्न हो एक रूप शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करे तदुपरान्त मुनिराज द्रव्यमय बाह्यलिङ्ग जिनाज्ञानुकूल धारण करे—यह ही मार्ग है।

प्रायः जीव पुण्यभावो में ही धर्म मान बैठते हैं। पुण्यभाव को जिनागम मे व्यवहार धर्म कहा है परन्तु अन्तरङ्ग में यदि निश्चय धर्म नही तो उत्कृष्ट पुण्य करने वाले जीव को भी व्यवहारा भाषी मिथ्यादृष्टि कहा गया है। जिनागम में धर्म शब्द का प्रयोग दो प्रकार से किया गया है। एक निश्चय धर्म तथा दूसरा व्यवहार धर्म। जितने २ अंश मे वीतराग भाव की प्राप्ति हो गई है उस ही का नाम निश्चय धर्म है और वीतराग भाव के साथ जितने अ श में पुण्य भाव हो उस ही का नाम व्यवहार धर्म है। पुण्य भाव नियम से बंध के ही कारण हैं। ऐसे भावों को मोक्षमार्ग में व्यभिचारी भाव कुशील भाव के नाम से कहा गया है। अज्ञानी जीव को निश्चय धर्म का ज्ञान नही है और व्यवहार धर्म को ही

निश्चय धर्म मान कर बैठा है। ऐसे व्यवहार धर्म से अज्ञानी मोक्ष की प्राप्ति चाहता है। आचार्य देव कहते है कि--

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टति।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥

अर्थ---पण्डितजन निश्चय नय के विषय को छोड व्यवहार मे ही प्रवृत्ति करते हैं परन्तु परमार्थ भूत आत्म स्वरूप के आश्रित मुनिश्वरो के ही कर्मो का क्षय कहा गया है। व्यवहार मे ही प्रवृत्ति करने वाले का नियम से कर्मक्षय कभी नही होगा।

अज्ञानी जीवो को उपदेश दिया जाता है कि व्यवहार धर्म रूपी पुण्यभाव यथार्थ मे निश्चय धर्म नही है। पुण्यभाव में धर्म मानने की श्रद्धा छुडाई जाती है इतनी बात सुनकर अज्ञानी जीव चिल्ला उठते हैं कि महाराज पुण्य छुडाते है परन्तु भाई जहा आप पाप नही छोडते है वहां पुण्य कैसे छोड़ देगे। विचार करने की बात यह है कि उपदेश सत्य का देना चाहिए अथवा असत्य का। इस अज्ञानी जीव ने असत्य मे सत्य मान कर अनन्तकाल निकाल दिया।

गुणस्थान का जिसको ज्ञान नही है उसे तत्व का भी ज्ञान नहीं है। गुणस्थान भावाश्रित ही है न कि क्रियाकाण्ड के आश्रित। अज्ञानी जीव द्रव्य मुनि लिङ्ग धारण कर ग्रैवेकका अहमिन्द्र बन गया परन्तु जन्म मरण के चक्कर से नहीं निकला। ऐसे जीवो को ज्ञान कराने के लिए ही इस गुणस्थान नाम के शास्त्र की रचना की गई है और कोई ख्याति, लाभ अथवा पूजा की कामना नही है। छद्मस्थ से त्रुटि बन जाना सम्भव है अत कोई त्रुटि यदि विशेष ज्ञानी के देखने मे आवे तो सूचित करने के लिए नम्र निवेदन है जिससे आगामी सस्करण में सुधार किया जा सके।

आपके शुभ चिन्तक,
ब्रह्मचारी मूलशकर देसाई

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	१	वन्ध	बंध
२८	१७	पुष्य	पुण्य
४८	२०	ऊपर	ऊपर
१३६	१६	इसीलिए	है, इसीलिए
१५०	७	त्रोन्द्रिय	त्रीन्द्रिय

विषय-सूची

श्री परमात्मने नम श्री भगवदात्मने नमः

श्री परम पारिणामिक भावाय नम

श्री

* गुणस्थान *

मंगलाचरण

गुणस्थान जाने नहीं, जाने नहीं देव स्वरूप।
गुरु स्वरूप भी जाने नहीं, तो कैसे होय मोक्ष स्वरूप ॥

मोक्षमार्ग में गुणस्थानों का स्वरूप जानना बड़ा जरूरी है। क्योंकि गुणस्थान भावों पर निर्भर हैं और भाव का नाम तत्त्व । इसी कारण आगम में कहा गया है कि "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्"। जिन जीवों को भावों का ज्ञान नहीं है, वे अज्ञानी हैं। अज्ञानी को ही मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

गुणस्थान चौदह होते हैं—१ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरत-सम्यक्त्व, ५ देश संयत, ६ प्रमत्त-संयत ७ अप्रमत्त-संयत, ८ अपूर्वकरण,

९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसांपराय, ११ उपशांत मोह, १२ क्षीण मोह, १३ सयोग केवली, १४ अयोग केवली।

शंका—मिथ्यात्व गुणस्थान में जीव के कैसे भाव होते हैं?

समाधान--अनादिकाल से जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में ही परिभ्रमण कर रहा है। एकेन्द्रिय से लेकर असञ्ज्ञी-पंचेन्द्रियतक के जीव मिथ्यादृष्टि ही हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याय के धारण करने के बाद अगर पुरुषार्थ करे तो मिथ्यात्व भाव का नाश कर सकता है। मिथ्यात्व भाव का सेवन प्रधानतया पांच कारण से होता हैं—१ एकान्त मिथ्यात्व, २ अज्ञान मिथ्यात्व, ३ विपरीत मिथ्यात्व, ४ विनय मिथ्यात्व, ५ संशय-मिथ्यात्व।

शंका—एकान्त मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

समाधान—पदार्थ अनंत धर्मात्मक है अर्थात अनंत गुण और पर्याय वाला है। गुण और पर्याय पदार्थ का धर्म है। जीव द्रव्य का धर्म जीव में ही होता है परन्तु जीव द्रव्य का धर्म पुद्गल द्रव्य में कभी नहीं होता। उसी प्रकार पुद्गल द्रव्य का धर्म पुद्गल में ही होता है, न कि जीव द्रव्य में। गुण का नाम सामान्य धर्म है और पर्याय का नाम विशेप धर्म है। गुण अनादि-अनन्त है

जबकि पर्याय समयवर्ती है। गुण नित्य है, पर्याय अनित्य है। गुण सत्‌रूप है, पर्याय असत्‌रूप है। फिरभी गुण के बिना पर्याय नहीं है और पर्याय के बिना गुण नहीं है। एकान्त मिथ्यादृष्टि जीव सामान्य धर्म को मानकर विशेष धर्म को नहीं मानता। इस कारण से वह ऐसो मान्यता करता है कि पदार्थ नित्य ही है, पदार्थ एक ही है, पदार्थ सत् ही है। इस प्रकार की मान्यता का नाम एकान्त मिथ्यत्वा है। अमुक जीव विशेष धर्म को मानकर सामान्य धर्म को नहीं मानते, जिस कारण से वह ऐसी श्रद्धा रखता है कि पदार्थ अनित्य ही है, पदार्थ असत् ही है, पदार्थ अनेक ही है। इस मान्यता का नाम एकान्त मिथ्यात्व है। जब एकान्त मिथ्यात्व की मान्यता छूटती है तब वह जीव ऐसी श्रद्धा करता है कि पदार्थ कथञ्चित् नित्य है, कथञ्चित् अनित्य है। कथंचित् सत्‌रूप है, कथंचित् असत्‌रूप है। कथञ्चित् एक रूप है तो कथंचित् अनेक रूप है। ऐसी मान्यता जब तक न होवें तब तक वह जीव एकान्त मिथ्यादृष्टि है।

शंका—अज्ञान मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

समाधान—अज्ञान मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा मानता है कि न स्वर्ग है, न नरक है। कुछ नहीं है अतः खाओ, पीओ

और आनन्द करो। इस मान्यता का नाम अज्ञान मिथ्यात्व है।

शंका---विपरीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

समाधान--कुछ करते रहो, कुछ करते रहो, एक दिन बेड़ापार हो जायगा। क्रिया बांझ नहीं है, निष्फल नहीं है, उसका कुछ-न-कुछ अवश्य फल मिलेगा। अर्थात मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र से भी मोक्ष हो सकता है। इसी प्रकार की मान्यता का नाम विपरीत मिथ्यात्व है।

शंका---विनय-मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

समाधान--सब देवों की पूजा करो, अपना इसमें क्या बिगड़ता है। पेड़ की पूजा करो, इससे कुछ-न-कुछ फल तो मिलेगा ही। पद से विपरीत भक्ति करना भी विनय-मिथ्यात्व है। भक्ति का लक्षण अज्ञानी के लक्ष्य में नहीं है। गुणों में अनुराग करना ही सच्ची भक्ति है। अज्ञानी गुणों को न देखकर अपनी कल्पना द्वारा किसी खास वेषभूषा के कारण आशायुक्त होकर भक्ति करता है। नग्न दिगंबर मुनि जो २८ मूलगुणों का आगमानुकूल पालन करता है, बाइस परिषहों को जीतता है और देव, मनुष्य, तिर्यंच द्वारा आये हुये उपसर्गों को जीतता है ऐसे जीवों को ही मात्र नमोस्तु कहना चाहिए,

पंचांग और अष्टाङ्ग नमस्कार करना चाहिए। ऐसे मुनि-महाराजाओं की ही नवधा भक्ति होती है। १ पडगाहना, २ ऊँचा आसन देना, ३ पैर प्रक्षालन करना, ४ नमस्कार करना, ५ पूजा करना, ६ मनःशुद्धि, ७ वचन शुद्धि, ८ कायशुद्धि, ९ आहार जल शुद्धि। पंचम गुणस्थानवर्ती ऐल्लक, क्षुल्लक, अर्जिका, क्षुल्लिका की नवधा भक्ति में से पूजा को छोड़कर शेष आठ प्रकार की भक्ति करनी चाहिए। फिर भी जो जीव पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों की पूजा करते हैं वे विनय मिथ्यादृष्टि हैं। पंचम गुण स्थान के जीव हमारे सहधर्मी हैं इस कारण वे जिनेन्द्र भगवान् के समवशरण में भी एक कोठे में एक साथ बैठते हैं। सहधर्मी के नाते से हम उन्हें इच्छाकार कहते हैं। जिन जीवों को नमोस्तु कहने की आज्ञा नहीं है ऐसे जीवों की पूजा करना विनय मिथ्यात्व नहीं है तो क्या है? पद के अनुकूल भक्ति करना ही विनय तप है। पद से विपरीत भक्ति का नाम विनय मिथ्यात्व है।

शंका—संशय मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

समाधान---संशय मिथ्यादृष्टि जीव, यह कल्पना करता है कि भक्ति से मोक्ष होता है या नहीं, पुण्य से संवर निर्जरा होगी या नहीं, शुद्ध आहार लेने से पुण्य होता है या नहीं, तत्व का निर्णय नहीं है पर सब तरफ

झुकी हुई शंकाशील डवांडोल वृत्ति का नाम संशय मिथ्यात्व है।

शंका---मिथ्यात्व के और कौन २ से भेद हैं ?

समाधान--मिथ्यात्व के और अनेक भेद हैं। जैसे १ पुण्यभाव में धर्म मानना मिथ्यात्व है, २ कर्मोदय में जो २ अवस्थाएँ होती हैं, उन अवस्थाओं को अपनी मानना मिथ्यात्व है, क्योंकि उन अवस्थाओं का नाम अजीव तत्त्व है और आप जीव तत्त्व हो। अजीव तत्त्व को जीव तत्त्व मानना मिथ्यात्व है। ३ मैं परजीव को मार सकता हूँ, परजीव को बचा सकता हूँ और परजीव को सुखदुःख दे सकता हूँ, ये मान्यताएँ मिथ्यात्व की हैं। ४ देव मेरा कल्याण कर दें, गुरू मेरा कल्याण कर दें यह मान्यता मिथ्यात्व की है। ५ संसार का कोई पदार्थ न अच्छा है, न बुरा, तो भी उनमें अच्छे-बुरे की कल्पना करना मिथ्यात्व है। ६ कुदेव में देवबुद्धि करना मिथ्यात्व है। ७ कुगुरू को सुगुरू मानना मिथ्यात्व है, ८ कुधर्म में धर्म मानना मिथ्यात्व है।

शंका---पुण्य में धर्म मानना मिथ्यात्व कैसे है ?

समाधान--पुण्यभाव से बंध होता है। जिसने बंध को अच्छा माना वह जीव बंधन को काटने का पुरुषार्थ कैसे कर सकता है ? पुण्य-पाप का भेद अघातिकर्मों में है।

अघाति कर्म आत्मा के सुख को घात करने वाला नहीं है। किन्तु घातिया कर्म आत्मा के सुखगुण का घात करने वाला है और पुण्यभाव से घातिया कर्मों में भी पाप का ही बंध पड़ता है, क्योंकि घातिया कर्म पाप रूप ही हैं। इसीलिए कहा है कि मोक्षमार्ग में जो जीव पाप को बुरा मानता है और पुण्य को अच्छा मानता है वह जीव अनन्त-संसारी है। देखिए--प्रवचनसार गाथा नं० ७७ योगसार गाथा नं० ७० ।

शंका---अरहन्तादिक की भक्ति करने से घातिया कर्मों में पाप का बंध कैसे होता है ?

समाधान--आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है परन्तु राग करना नहीं है फिरभी जो जीव अपने स्वभाव में न रहकर अरहन्त भक्ति में राग करता है, उस जीव ने अपने स्वभाव का घात किया अर्थात अपने सुख को जलाया इस कारण से घातिया कर्मों में पाप का ही बंध होता है।

शंका—सम्यग्दृष्टि आत्मा जब अरहन्त की भक्ति करता है तब पाप की निवृति हो जाती है और जितने अंशों में पाप की निवृति होती है उसी का नाम वीतराग भाव है। ऐसा वीतराग भाव जब अरहन्त भक्ति से होता है तो अरहन्त भक्ति को बंध का कारण कैसे कहते हो ?

समाधान---एक समय का एक उपयोग होता है। जिस समय को आप अरहन्त भक्ति के उपयोग में लगाते हो उस समय में पाप रूप सब वासना का नाश नहीं होता है परन्तु वासना अपना काम करती है। जब तक वासना का यमरूप त्याग न किया जावे तब तक वासना अपना फल नियम से देगी। जैसे—जिस समय आप अरहन्त भक्ति करते हो तब क्या हिंसा का भाव, झूठ बोलने का भाव, चोरी करने का भाव, कुशील-सेवन का भाव, परिग्रह रखने का भाव चला जाता है? अर्थात् वासना हृदय में हैं। यदि चला जावे तो आपका छटा गुणस्थान होना चाहिए यानी महाव्रती बन जाना चाहिए। परन्तु आप तो अव्रती के अव्रती ही हो। अतः सिद्ध हुआ है कि अरहन्त भक्ति करते समय पापभाव की निवृत्ति नहीं होती है परन्तु वासना में सब पापभाव मौजूद रहते है। जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव भक्ति करता है उसी समय एक अव्रती सम्यग्दृष्टि भक्ति करता है तथा तभी एक व्रती श्रावक भी भक्ति करता है उसी काल में एक भावलिंगी मुनि भी भक्ति करता है तब क्या इन सब जीवों की पाप की निवृत्ति एक-सी होती है? कभी नहीं। मिथ्यादृष्टि को चारों कषाओं का बंध पड़ता है, अव्रत सम्यग्दृष्टि को तीन कषायों का बंध होता है, व्रती श्रावक को दो कषायों का बंध होता है और

मुनिमहाराज को मात्र संज्वलस कषाय का बंध होता है। अतः सिद्ध हुआ कि भक्ति करते समय पाप भाव की निवृत्ति स्वरूप संवर-निर्जरा तत्त्व नहीं होता। जब वही आत्मा प्रशस्त रागरूप भक्ति छोड़कर पंचेन्द्रिय के विषयरूप अप्रशस्त राग में प्रवृत्ति करता है, उस काल में भी जितना संवर-निर्जरा भक्तिरूपी प्रशस्त राग के वक्त था उतना ही संवर-निर्जरा अप्रशस्त राग में भी हैं। क्योंकि पुण्यभाव में पाप तत्त्व का, संवर तत्त्व का तथा निर्जरा तत्त्व का अभाव है। उसी प्रकार संवर-निर्जरा तत्त्व में भी पुण्य पापरूपी तत्त्वों का अभाव है। सब तत्त्व स्वतंत्र हैं। एक तत्त्व में अन्य तत्त्व का अभाव है।

शंका---सम्यग्दृष्टि आत्मा में पुण्य तथा संवर-निर्जरा तत्त्व एक साथ कैसे रहते होंगे ?

समाधान--पुण्यभाव के साथ में संवर निर्जरा तत्त्व के होने में विरोध नहीं है। क्योंकि ऐसे भाव का नाम मिश्र भाव है। सम्यग्दृष्टि का अनंतानुबन्धी कषायरूप भाव चला गया वह तो संवर भाव है। अप्रत्याख्यान कषाय में असंख्यात लोक प्रमाण कषाय भाव होता है उसमें से जितनी कषायों का यानी इच्छाओं का यमरूप त्याग किया है वह भाव निर्जरा है और जितनी इच्छाएँ वर्तमान में हैं, उनमें से जितनी इच्छाएँ प्रशस्त रागरूप है

वे तो पुण्य तत्त्व हैं और जितनी इच्छाएँ अप्रशस्त रागरूप हैं वे पाप तत्त्व हैं। उसी प्रकार मिश्र भाव में चार तत्त्वरूप भाव बन सकते हैं परन्तु पुण्य तत्त्व में संवर, निर्जरा हो जावे यह मान्यता अज्ञान की है। सम्यग्दृष्टि आत्मा के भीतर जितने अंश में संवर निर्जरा रूप वीतराग भाव की प्राप्ति हुई है उसे ही वह उपादेय मानता है और जितने अंशों में पुण्य पापरूपी राग सहित भाव है उनको वह हेय मानता है। उन्हें छोड़ने की चेष्टा करता है। मिथ्यादृष्टि पुण्यभाव में संवर निर्जरा मानता है इसलिए वह पुण्यभाव को उपादेय मानता है। वही उसका अज्ञान भाव है।

शंका---अरहन्त भक्ति पुण्यभाव है और पुण्यभाव से बंध होता है। तो भी सम्यग्दृष्टि आत्मा अरहंत भक्ति क्यों करता है?

समाधान--सम्यग्दृष्टि आत्मा पापभावों से बचने के लिए अरहंत भक्तिरूप पुण्यभाव में प्रवृत्ति करता है तो भी अरहंत भक्ति रूप पुण्यभाव को वह उपादेय नहीं मानता है परन्तु हेय ही मानता है। जितने अंशों में पाप भाव से बच गया, उसकी उसको खुशी है परन्तु भक्ति करनी पड़ती है उसका उसे दुःख है। जैसे---एक पुरुष को शिखरजी के पहाड़ पर गौतम स्वामी की टोंक

पर जाने की इच्छा है पर आगे चलने की शक्ति नहीं है तब वह पेड़ की छाया का आश्रय लेकर विश्रान्ति लेता है किन्तु आराम लेते वक्त भी जितना रास्ता पार कर गया उसकी उसको खुशी है और विश्रान्ति लेनी पड़ती है उसका उसे दुःख है। विश्रान्ति लेते समय भी उसकी यही श्रद्धा है कि पेड़ की छाया का आश्रय छोड़कर कब मैं आगे बढ़ूँ। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा ने जितने अंशों में पाप भाव छोड़ा उसकी उसे खुशहाली है और जितने अंशों में भक्तिरूप राग का आश्रय लिया है उसका उसे दुःख है। उसी वक्त उसकी श्रद्धा काम करती है कि भक्तिरूप राग का आसरा छोड़कर स्वभाव में कब स्थिर हो जाऊँ। ऐसी भावना मिथ्यादृष्टियों में कभी नहीं होती, क्योंकि वह पुण्यरूपी प्रशस्त राग को मोक्ष का कारण मानता है। जिसने बन्धन भाव को मोक्ष का कारण माना वह जीव बंधन से कभी मुक्त नहीं हो सकता। अतः सिद्ध हुआ कि मुमुक्षुओं को पापभाव छोड़ के पुण्य भाव में आना चाहिए और श्रद्धा में पुण्य को भी हेय माने परन्तु पुण्यभाव को श्रद्धा में उपादेय माने वह जीव मिथ्यादृष्टि ही है। उपादेय भाव मात्र वीतराग भाव ही है ऐसी बुद्धि अज्ञानियों की कभी नहीं होती है।

शंका—पुण्यभाव कौन २ से हैं ?

समाधान—पुण्यभाव असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। फिरभी उनको तीन भावों में गर्भित किया गया है। १ प्रशस्तराग, २ अनुकम्पा, ३ चित्त प्रसन्नता।

१ प्रशस्तराग—अरहंत भक्ति का राग, गुरु की उपासना का राग, शास्त्रभक्ति का राग, स्वाध्याय का राग, उपवास का राग, श्रावक के व्रत अंगीकार करने का राग, मुनि का तेरह प्रकार का व्यवहार चारित्र पालन करने का राग, मुनि के २८ मूलगुण पालन करके का राग, मुनि के व्यवहार दशधर्म पालन करने का राग, २२ परिषह जीतने का राग, बारह भावनाओं का चिंतवन करने का राग ये सब भाव प्रशस्त रागरूप-पुण्यभाव हैं। ये पुण्यभाव छोड़ना संवर निर्जरा का कारण है पर -पुण्यभाव करना संवर निर्जरा का कारण नहीं है।

२ अनुकम्पा—प्राणिमात्र को दुःखी देखकर उन्हें दुःखों से छुड़ाने का भाव का नाम अनुकम्पा रूप पुण्यभाव है।

३ चित्त प्रसन्नता—लोकोपकारी कार्यों के करने के भावों का नाम चित्त प्रसन्नता है। जैसे—पाठशाला खुलवाना, धर्मशाला बनवाना, स्कूल चलवाना आदि। अतः सिद्ध होता है कि पुण्यभाव में संवर, निर्जरा तत्त्व का अभाव है। फिरभी पुण्यभाव से संवर, निर्जरा

चाहता है यह उसका मिथ्यात्वभाव है। यदि पुण्यभाव से संवर-निर्जरा होने लगे तो द्रव्यलिंगी मुनि को भी पुण्यभाव से संवर, निर्जरा होनी चाहिए थी किन्तु वहाँ नाममात्र के लिए भी संवर, निर्जरा नहीं है। संवर, निर्जरा सम्यग्दर्शन के बाद ही होती है। शास्त्र में बहुत से स्थानों पर पुण्यभाव को संवर निर्जरा का कारण कहा है। उसका यही तात्पर्य है कि पापभाव में से आत्मा संवर निर्जरा रूप भावों में एकदम जा नहीं सकती। परन्तु पुण्यभाव में आने के बाद अगर आत्मा सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ करे तो संवर निर्जरारूप भावों की प्राप्ति कर सकती है। यही सम्बन्ध देखकर के पुण्यभाव को संवर निर्जरा का कारण कहा है। किन्तु परमार्थ दृष्टि से विचार किया जाय तो पुण्यभाव से संवर निर्जरा कभी नहीं होती। जिस जीव को अन्तरंग में ऐसी श्रद्धा नहीं है वह मिथ्यादृष्टि ही है।

शंका—कर्मोदय में जो २ अवस्थाएँ होतीं हैं उन्हें आत्मा की मानने में मिथ्यात्व किस बात का आता है?

समाधान—कर्मोदय में जो अवस्थाएँ होती हैं उन्हें आत्मा की मानने से उन अवस्थाओं का जब अभाव होगा तब आत्मा का भी नाश हो जायगा। इसलिए कर्मोदय में जो अवस्था होती है उस अवस्था की आत्मा ज्ञाता

द्रष्टा है, न कि उसका स्वामी। आत्मा त्रिकाली द्रव्य है और त्रिकाल का कभी नाश नहीं होता। ऐसा जो आत्मा का त्रिकाली स्वभाव है वही मैं हूँ ऐसी श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है तो भी अपने त्रिकाली स्वभाव का स्वामी न वन करके कर्मोदय जनित अवस्थाओं का स्वामी वनना यही मिथ्यात्व भाव है।

शंका—मनुष्य को मनुष्य जानने में मिथ्यात्व किस बात का आता है?

समाधान—जानना यह ज्ञान की अवस्था है, न कि श्रद्धा की। ज्ञानी जानता है कि मनुष्य पर्याय अजीव तत्त्व है परन्तु जीव तत्त्व नहीं है। किन्तु अज्ञानी आत्मा मनुष्य पर्याय को ही जीव तत्त्व मान लेता है इस कारण से वह कहता है—मैं काला हूँ, मैं गोरा हूँ। मैं मोटा हूँ, मैं दुवला हूँ, मैं स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, परन्तु मैं ज्ञायक स्वभावी आत्मा हूँ ऐसा भाव अज्ञानी जीवों को होते ही नहीं है इस कारण से वह शरीर के नाश से अपना ही नाश मानता है। यही उसका अज्ञान भाव है।

शंका—परजीव को मैं मार सकता हूँ, परजीव को वचा सकता हूँ आदि भावों से मिथ्यात्व कैसे होता है।

समाधान—संसार में सव जीव अपनी आयुकर्म के

नाश से ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। आप परजीव की आयु को लूटते नहीं हो तो आपने उसका मरण कैसे किया ? सब जीव अपनी आयु के सद्भाव में जीवित रहते हैं, आप उसे अपनी आयु तो देते नहीं हो फिर आपने उसे कैसे जिला दिया या बचा दिया ? सब जीवों को सुख दुःख की सामग्री अपने २ साता-असाता कर्म के उदय से मिलती है। तब आपने सुखदुःख की सामग्री दी यह आपका कहना कहाँ तक सत्य है ? इस प्रकार से अज्ञानी जीव दूसरे की क्रिया का स्वामी बनता है, वही उसका मिथ्यात्व भाव है।

शंका—यदि हम परजीव को बचा नहीं सकते हैं तो षट्कायिक जीवों की रक्षा का उपदेश क्यों दिया गया है ?

समाधान—यह व्यवहार का उपदेश है। परमार्थ से विचार किया जाय तो षट्काय में अपनी आत्मा अनादिकाल से परिभ्रमण करता है। इसी कारण अपनी आत्मा को ही रागद्वेष के भावों से बचाना उसी का नाम षट्काय की रक्षा है। यदि आपने रागद्वेष का भाव न किया तो परजीव की रक्षा स्वयं हो जाती है।

शंका---पानी छानकर पीओ वहाँ भी तो जीव को

बचाने का उपदेश है। अगर हम जीव को बचा नहीं सकते हैं तो ऐसा उपदेश क्यों दिया गया है ?

समाधान—जीव के बचाने का भाव आप करते हैं तो भी आपके भाव के अनुकूल परजीव बच जाय ऐसा सम्बन्ध नहीं है। जिस समय छन्ने के ऊपर पानी की धारा छानने के लिए करते हो उस समय भी असंख्यात जीव मर रहे हैं तो भी आप का मारने का भाव नहीं है, इस कारण से आप हिंसक नहीं हैं, पर अहिंसक ही हैं। हिंसा में प्रमाद मूल है। जहाँ प्रमाद है वहाँ जीव न मरे तो भी आप हिंसक ही हैं। जहाँ प्रमाद नहीं है वहाँ जीव मर भी जाय तो भी आप अहिंसक ही हैं।

शंका—डाक्टर मनुष्य को बचाता है फिरभी आप कैसे कहते हो कि जीव को बचाया नहीं जा सकता ?

समाधान—डाक्टर का अभिप्राय रोगी को आराम देने का है। इस अभिप्राय से डाक्टर रोगी जीव का आपरेशन भी करता है और करते २ जीव मर भी जाय तब क्या आप यह कहते हो कि डाक्टर ने उसे मार डाला ? अर्थात् नहीं। यदि डाक्टर मनुष्य को बचा सके तो वह स्वयं क्यों मरता है ? अतः सिद्ध हुआ कि सब जीव अपनी २ आयु के सद्भाव में जीवित रहते हैं और आयु के क्षय में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर भी मैंने

बचा लिया, मैंने मार दिया यह अभिप्राय मिथ्यादृष्टि का ही है।

शंका—यदि हम जीव को बचा सकते नहीं है तो हम पानी छानकर क्यों पीयें ?

समाधान—आपका भाव पानी छना हुआ ही पीने का है। अतः आप छानते हो। अगर आपका भाव नहीं होगा तो आप पानी छानने की चेष्टा कभी नहीं करोगे। पानी छानने की चेष्टा करने पर भी जिस जीव की आयु पूरी हो गई है वह नियम से मरण को प्राप्त हो जायगा। कृष्ण नारायण ने अपने माता-पिता को बचाने के लिए सब कुछ चेष्टा की तो भी बचा न सका। यदि जीव बच जावे तो आप कहते हो मैंने बचा लिया। पर अगर मर जावे तो आप कहते हो कि उसकी आयु पूरी हो गयी। यही तो अज्ञानभाव है। बचता भी है तो अपनी आयु से और नाश को प्राप्त है तो भी अपनी आयु के क्षय से। तो भी अज्ञानी अहंकार करता है कि मैंने बचाया। इसी अहंकार भाव का नाम मिथ्यात्व या अज्ञानभाव है। बंध क्रिया से न होकर भाव से होता है।

शंका—क्रिया से बंध कैसे नहीं होता ?

समाधान—एक कसाई गाय काटने की क्रिया करता है और एक डॉक्टर मनुष्य को ऑपरेशन के रूप

में काटने की क्रिया करता है। क्रिया दोनों की समान होने पर भी भाव में महान् अन्तर है। एक का भाव मारने का है तो दूसरे का रक्षा करने का भाव है। बिलाव (बिल्ली) अपने मुख से अपने बच्चे को पकड़ती है तो भी बच्चों को आँच नहीं आती और वही बिल्ली उसी मुख से चूहे को पकड़ती है परन्तु चूहे को मुख से आवाज निकालने का मौका न देकर मार डालती है। क्रिया समान होने पर भी भाव में अन्तर है। अज्ञानी क्रियाओं में धर्म मानता है तो ज्ञानी भावों से धर्म मानता है। यही दोनों में अन्तर है। स्त्री की योनि में दसप्राण के धारी सम्मूर्छन जीव हैं, यह आप आगम से जानते हो। तो भी आप जीव को क्यों मारते हो? क्या जीवों को मारने का आपका भाव है? अथवा भोगने का भाव है? जीवों के मरने से बंध नहीं है। पर जिस वासना से आप भोग करते हो उसी वासना से बंध होता है। यदि आप भोग न करो तो क्या जीव बच जावेंगे? जिन जीवों की केवल मात्र साँस के अठारहवें भाग बराबर आयु है, वे नियम से मृत्यु को प्राप्त होंगे ही। उन्हें बचाने की किसी की ताकत नहीं है। फिर भी अज्ञानी कहता है कि मैं ने बचाया, मैंने मार दिया। यह अभिप्राय मिथ्यादृष्टि का ही है।

शंका—गरीब लोगों को धनवान लोग सुख पहुँचाते हैं। फिर भी आप यह कैसे कहते हो कि कोई किसी को सुख नहीं पहुँचा सकता।

समाधान—एक भिक्षुक आपके पास भिक्षा मांग रहा है कि मैं भूखा हूँ, अतः मुझे कुछ दो। तब आप कहते हो, 'माफ करो'। दो मिनिट बाद दूसरा भिक्षुक आता है। वह कहता है मैं भूखा हूँ, कुछ दीजिए। तब आप कहते हो, मजदूरी करके कमा के खाओ। पांच मिनिट बाद तीसरा भिक्षुक आता है, उसे देखकर आपके दिल में करुणा पैदा होती है। भिक्षुक कहता है, 'बहुत भूखा हूँ', कुछ दीजिए। तब आपके भीतर में भाव होता है 'मै दो पैसे दूँ'। जेब में हाथ डालने से दो आने निकले, आपने दो आने दे डाले। तत्वदृष्टि से सोचिए कि आपने उसे दो आने दिए हैं अथवा उसके पुण्य से उसे मिले हैं? उस भिक्षुक को २ आने अपने पुण्योदय से मिले हैं। फिर भी अज्ञानी कहता है कि मैंने २ आने दिए। यह उसका अज्ञानभाव है।

शंका—देव मेरा कल्याण कर देवे, गुरु मेरा कल्याण कर देवे, इसमें मिथ्यात्व किस बात का आता है?

समाधान—देव वीतराग है। वह न कल्याण करता

हैं, न अकल्याण, फिर भी अज्ञानी कहता है, 'देव मेरा कल्याण कर देवें'। यह उसका आज्ञान भाव है। क्योंकि अज्ञानी को देव के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

शंका—यदि देव हमारा कल्याण न करें तव हम उनकी भक्ति क्यों करें!

समाधान—पाप भाव से बचने के लिये देव की भक्ति की जाती है। देव की भक्ति करने से आपको पुन्यबंध होता है। उस पुन्योदय से वाह्य विभूति मिलती है। जितने अंशों में आप पाप से बच गये उतने अंशों में आपका कल्याण हुआ अथवा नहीं? ऐसा वस्तुस्वरूप का ज्ञान न होने से अज्ञानी कहता है कि भगवान् मेरा कल्याण कर देवें। यह उसका अज्ञानभाव है, क्योंकि भगवान् की आत्मा अलग है और आपकी आत्मा अलग है। भगवान् आपका कल्याण कैसे करेगा? भगवान् की आत्मो में अनंत सुख है, आपकी आत्मा में अनंत दुःख है। तब क्या भगवान् आपको सुख देकर, आपका दुख घटाकर अपने खुद का सुख घटा लेगा? परन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। संसार में सब जीव सुखी दुःखी अपने भावों से होते हैं। ऐसा ज्ञान जब तक न होवे तब तक जीव अज्ञानी-मिथ्या दृष्टि ही है।

शंका—संसार के अच्छे पदार्थों को अच्छा कहने

और बुरे को बुरा कहने में मिथ्यात्व किस बात का आता है ?

समाधान—संसार का कोई पदार्थ न अच्छा है, न बुरा है ! फिर भी जीव अपनी कल्पना द्वारा अच्छा या बुरा मान लेता है। किन्तु पदार्थ अच्छे बुरे नहीं है। तब भी अच्छे-बुरे मानना यही मिथ्यात्व है। जैसे जिस मलमल को आप अच्छा मानते हों उसी को जाड़े के दिन में खराब मानते हो। वस्तु में क्या फर्क हो जाता है। केवल मान्यता में ही फर्क है। जिस टट्टी को आप खराब मानते हो उसी को सूअर प्रेम से खाते हैं। जिस गाली को आप बुरा मानते हो उसी गाली को ससुराल में प्रेम से सुनते हो। जिस भगवान् की मूर्ति को आप अच्छी मानते हो उस मूर्ति का अन्यमती खंडन करते हैं। बताइये, पदार्थ अच्छे-बुरे कैसे रहें ?

शंका—यदि पदार्थ अच्छे-बुरे नहीं हैं तो मांस भक्षण के त्याग का उपदेश और वनस्पति के भक्षण के उपदेश क्यों दिया जाता है ?

समाधान—पदार्थ को छुड़ाना नहीं अपितु पदार्थ के प्रति जो आपका राग है उसे छुड़ाने के लिए पदार्थ के त्याग का उपदेश दिया जाता है। परमार्थ दृष्टि से पर पदार्थ का त्याग नहीं होता है परन्तु पर पदार्थ के प्रति जो

आपका मूर्छाभाव है उसका त्याग करना ही सत्य त्याग है। जो जीव मांसाहारी है, मांस में उसका राग है। उसको कहा जायगा, 'माँस छोड़कर वनस्पति भक्षण करो'। जब वह जीव मांस छोड़कर कन्दमूल आदि वनस्पति खाने लगेगा तब वही उपदेश उसे दिया जायगा कि कन्दमूल छोड़कर ककड़ी खाओ। जब ककड़ी खाने लगेगा तब वही उपदेश दिया जायगा कि ककड़ी छोड़कर प्रासुक आहार खाओ। जब प्रासुक आहार खाने लगेगा तब वही उपदेश दिया जायगा कि प्रासुक आहार छोड़कर उपवास करो। अतः सिद्ध हुआ कि पदार्थ का छुड़ाना नहीं, वरन् पदार्थ के प्रति जो राग है उसे छुड़ाना है। तन्दुल मच्छ कुछ नहीं खाता पर अपने भाव बिगाड़ कर वह सप्तम नरक में चला जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ दुःख का कारण न होकर अपना राग ही दुख का मूल है। मांसाहारी सब जीवों के समान बन्ध नहीं पड़ता परन्तु राग के अनुकूल बन्ध पड़ता है। यद्यपि तीव्र राग के बिना मांसाहार ग्रहण नहीं किया जाता तो भी मांसभक्षण से बंध नहीं होता, अपने राग की मात्रा के अनुकूल बन्ध पड़ता है। उसी प्रकार अव्रत सम्यग्दृष्टि आत्मा अमर्यादित पदार्थ भक्षण करता है। तो भी पदार्थ से बन्ध नहीं होता है किन्तु जिस रागभाव से

आहार लेता है तदनुकूल वन्ध होगा। एक श्रावक के चौके में मुनि-महाराज आहार ले रहे हैं, व्रती श्रावक भी आहार लेता है और अव्रती श्रावक भी आहार लेता है पर क्या उन सबको समान बंध होगा या अपने अपने भावों के अनुकूल बंध होगा ? मुनिमहाराज को संज्वलन कषाय का बंध होता है, व्रती श्रावक को प्रत्याख्यान कषाय का बंध पड़ता है और अव्रती सम्यग्दृष्टि को अप्रत्याख्यान कषाय का वन्ध पड़ता है और व्यवहार सम्यग् दृष्टि को अनन्तानुबन्धी का बंध होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ वन्ध का कारण न होकर अपने भाव ही वन्ध का मूल हेतु है। अज्ञानी जीव पर पदार्थ का सुख दुख का कारण मानता है पर अपने भाव को दुःख का कारण नहीं मॉनता। यही उसके दुःख का मूल कारण है।

शंका—यदि पदार्थ खराब नहीं है, तब व्रती श्रावक अमर्यादित आहार का त्याग कर शुद्धाहार क्यों लेते हैं ?

समाधान—व्रती श्रावक का अमर्यादित आहार लेने का भाव नहीं होता है। इस कारण से वह अमर्यादित पदार्थों का भक्षण नहीं करता। जहॉ राग छूट जाता है वहॉ राग का कारण स्वयं छूट जाता है।

वह छोड़ना नहीं पड़ता। जैसे माता का दूध भक्ष्य है। फिर भी माता के दूध का राग छूट जाने से दूध का स्वयं त्याग हो जाता है।

शंका—कुदेव में देव बुद्धि करना मिथ्यात्व कैसे है।

समाधान—देव का लक्षण वीतरागता, सर्वज्ञता, हितोपदेशीपन तथा १८ दोष रहित होना चाहिए। फिर भी रागी जीवों में देव की कल्पना करना यह मिथ्या भाव नहीं है तो क्या है? पदार्थ का जैसा स्वरूप है उसे वैसा जानना मानना सम्यगज्ञान है। उससे विपरीत मानना मिथ्याज्ञान है। देव आत्मा की विशेष प्रकार की निर्मल पर्याय का नाम है। अर्थात् जिस आत्मा में अनंत ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य- प्रगट हुआ है ऐसी पर्यायवाली आत्मा का नाम देव है। जिसको आत्मा की पर्याय का ज्ञान नहीं है वह मिथ्या दृष्टि ही है।

शंका—सुदेव को छोड़कर कुदेव की पूजा करने से क्या बिगड़ता है!

समादान—गुण में अनुराग करने का नाम पूजा है। जब गुण ही आपको ज्ञान में न आया तो पूजा आपने किसकी की? अज्ञानी जीव राग में राग करता है। इस

कारण से उसे मिथ्यात्व सहित किंचित पुन्य बन्ध होता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा गुण में अनुराग करता है इस कारण से उसे सम्यगदर्शन पूर्वक सातिशय पुन्य का बंध होता है। गुण में अनुराग करने का ज्ञान होने से कुदेव की मान्यता स्वतः छूट जाती है। रागी देवों में जीव कुछ न कुछ वासना लेकर पूजा करता है। उसी वासना का नाम अज्ञानभाव है। जैसे अर्हंत को भक्ति छोड़कर पद्मावती की भक्ति क्यों करते है? क्षेत्र पाल की भक्ति क्यों करते हैं? पद्मावती व क्षेत्रपाल दोनों मिथ्यादृष्टि ही देव हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव ही भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं। जो जीव मिथ्यादृष्टि की भक्ति करता है वह अज्ञानी नहीं है तो क्या है?

शंका—कुगुरू को सुगुरू मानने में मिथ्यात्व किस बात का है?

समाधान—सुगुरु के गुणों की पूजा होती है। जिस आत्मा में अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, तथा प्रत्याख्यान कषाय चली गई हैं और जो बाह्य में २८ मूल गुणों का आगमानुकूल पालन करता है, २२ परिषहों को जीतता है और मनुष्य, देव, तिर्यंच द्वारा आये उपसर्गों को सहन करता है ऐसे जीवों की गुरू संज्ञा है। ऐसे गुरू को गुरू न मानकर परिग्रहधारी को गुरू मानना

पंचेन्द्रिय के लम्पटी को गुरू मानना यह अज्ञान भाव नहीं है तो क्या है ? आपमें तथा कुगुरू में क्या अन्तर है ? आप परिग्रहधारी हो, पंचेन्द्रिय के लम्पटी हो, तब आप भी वैसे गुरू बन गये फिर गुणों में भक्ति कहाँ रही ? गुरू आत्मा की एक निर्मल पर्याय का नाम है। जिस जीव को द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं है वह अज्ञानी नहीं है तो क्या है ? भक्ति करते वक्त आप ऐसा ही भाव रखते हैं कि जैसा गुरू का पद है वैसे ही पद की प्राप्ति मैं कैसे करूँगा ? उस भावना का नाम गुरू भक्ति है। इसलिए जिस जीव में गरू के गुण नहीं हैं उसे गुरू मानना मिथ्यात्व भाव है।

शंका—कुधर्म में धर्म मानना मिथ्यात्व कैसे है ?

समाधान—हिंसा के भावों से पाप ही होता है और पाप में धर्म मानना मिथ्यात्व है। काली आदि देवियों को पशुबलि देना और उसमें धर्म मानना अज्ञान भाव है। क्योंकि जीवों की रक्षा करना उसी का नाम व्यवहार धर्म है। जीवों को मारने का भाव व्यवहार धर्म भी कैसे हो सकता है ! पति के वियोग में सती हो जाना धर्म कैसे हो सकता है ! परन्तु पति के वियोग में ब्रह्मचर्यावस्था रख करके विषय कषायों की निवृत्ति करना जो कि धर्म मार्ग है, इसे न अपना कर पति के

वियोग में जल मरने में धर्म किस बात का ? जिस जीव को तत्व का ज्ञान नहीं है। उसे धर्म का ज्ञान नहीं है। धर्म शब्द का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक निश्चय, दूसरा व्यवहार धर्म। निश्चय-धर्म कषाय रहित आत्मा की अवस्था का नाम है वही धर्म सुख का तथा मोक्ष का कारण है। आत्मा में जो पुन्य भाव उठता है उसी का नाम व्यवहार धर्म है। उस व्यवहार धर्म से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। पर मोक्ष मार्ग की तो साक्षात् अन्तराय करने वाली है। ऐसे पुन्यभाव रूपी व्यवहार धर्म को निश्चय धर्म मानते है वे मिथ्यादृष्टि है।

शंका—मिथ्यादृष्टि की बाह्य प्रवृति किस प्रकार की होती होगी ?

समाधान—तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव पशु आदि का बलिदान देकर अपने को धर्मात्मा मानता है, परिग्रह-धारियों को गुरू मानता है। स्त्री के साथ में रमण करने वाले को देव मानता है। जो जीव कुदेवादिक की भक्ति में धर्म मानता हैं वह भी मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि भक्ति राग में ही होती है, राग दुःख का कारण है पर धर्म नहीं हो सकता परन्तु ये सब पुण्यभाव है जो स्वर्ग लोक के कारण हैं ऐसे भावों को धर्म मानना या मोक्ष

का कारण मानना यह मिथ्यात्व ही है। जो जीव सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी को देव मानते हैं परन्तु देव को क्षुधा लगती है, रोग हो जावे तो वे औषधि-सेवन भी करते हैं, परिग्रह धारियों को गुरू मानते हैं और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह को पाप मानते हैं तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को धर्म मानते हैं। यद्यपि ये भाव धर्म के नहीं हैं पुण्य के हैं तो भी उनमें धर्मबुद्धि करते हैं। अंधभक्ति से मोक्ष मानते हैं, वे जीव भी मध्यम मिथ्यादृष्टि हैं अर्थात् गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। जो जीव वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी और अठारह दोष रहित को देव मानते हैं, नग्न दिगम्बर मुनि जो २८ मूल गुणों का पालन करते है, २२ परिषहों को जीतते हैं। देव, तिर्यंच, मनुष्य द्वारा आये उपसर्गो को सहन करते हैं उसको सुगुरू मानते हैं। जिसने कुदेव, कुगुरू, कुधर्म की मान्यता छोड़कर गृहीत मिथ्यात्व का त्याग किया है परंतु अरहंत भक्ति जो पुण्य भाव है उसे धर्म भाव मानते हैं, गुरू की उपासना जो पुण्य भाव है, उसे धर्म भाव मानते हैं, शास्त्र स्वाध्याय जो पुण्यभाव है उसे धर्मभाव मानते हैं, उपवास के भाव जो पुन्यभाव हैं उसे धर्मभाव मानते हैं। श्रावक के व्रत के भाव जो पुन्यभाव हैं उसे धर्मभाव मानते हैं। तेरह प्रकार का व्यवहार चारित्र जो

पुन्यभाव है उसे धर्मभाव मानते हैं। मुनिके व्यवहार दश धर्म जो पुन्यभाव हैं उन्हें धर्मभाव मानते हैं ऐसे जीव अगृहीत जघन्य मिथ्यादृष्टि हैं।

जीव ने अनंत बार मुनिलिंग धारण किया परन्तु पुन्यभाव में धर्म मानने की मान्यता न छोड़ी जिस कारण से बाह्य में मुनिलिंग होने पर भी अन्तरंग में मिथ्यात्व गुण स्थान ही है। कहा भी है कि:—

"भाव रहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंत संसारे।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं॥"

अर्थ—हे सत्पुरुष! अनादि काल से लेकर इस अनंत संसार में तूने भाव रहित निर्ग्रंथ लिंग बहुत बार धारण किया है और छोड़ा है।

शंका—मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

समाधान—कर्म की १४८ प्रकृतियों में से स्पर्शादिक २० प्रकृतियों का, अभेद विवक्षा से रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चार में और बंधन पांच, संघात पांच का अभेद विवक्षा से पाँच शरीरों में अन्तरभाव होता है। इसी कारण भेद विवक्षा से १४८ प्रकृतियाँ और अभेद विवक्षा से १२२ प्रकृतियाँ हैं। सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन दो प्रकृतियों का वन्ध नहीं होता है। क्योंकि

इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता सम्यक्त्व परिणामों से मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खंड करने से होती है। इसी कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के बन्ध योग्य प्रकृतियाँ १२० और सत्तायोग्य प्रकृतियां १४६ हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपाँग इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। क्योंकि इन तीन प्रकृतियों का बन्ध सम्यग्दृष्टियों के ही होता है। इसलिए इस गुण स्थान में १२० प्रकृतियों में से ३ प्रकृतियां घटाने पर ११७ प्रकृतियों का बंध नाना जीवों की अपेक्षा से होता है।

शंका---मिथ्यात्व गुणस्थन में कितनी प्राकृतियों का उदय होता है ?

समाधान---सम्यक्-प्रकृति, सम्यक्-मिथ्यात्व-प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक-अंगोपांग और तीर्थंकर प्रकृति इन पांच प्रकृतियों का इस गुणस्थान में उदय नहीं होता। इसलिए १२२ प्रकृतियों में से ५ प्रकृतियों के घटा देने पर ११७ प्रकृतियों का उदय नाना जीवों की अपेक्षा से है।

शंका---मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है ?

समाधान---१४८ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका---मिथ्यात्व गुणस्थान में ५ भावों में से कौन कौन से भाव हैं ?

समाधान—गति, वेद, कषाय, मिथ्यात्व, असंयम, लेश्या, असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं अर्थात् श्रद्धा, चारित्र, क्रिया, योग, प्रदेशत्व आदि गुण की अपेक्षा से औदयिक भाव हैं। परन्तु अज्ञान नाम का औदयिक भाव नहीं है क्योंकि ज्ञानगुण क्षयोपशमिक भाव से परिणमन करता है। एक गुण एक समय में एक ही भाव से परिणमन करेगा यह न्याय है- एक गुण की एक ही समय में दो अवस्था नहीं होती। दर्शन, ज्ञान, वीर्य की अपेक्षा से क्षयोपशमिक भाव हैं। अमुक जीवों में शक्ति की अपेक्षा से जीवत्व, भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव हैं तथा अमुक जीवों में जीवत्व अभव्यत्व नामक पारिणामिक भाव हैं परन्तु श्रद्धा गुण वर्तमान में इस रूप परिणमन नहीं करता है। अभेद विवक्षा से ज्ञान तथा दर्शन गुण को जीवत्व भाव कहते हैं परन्तु भेद विवक्षा से वह दोनों गुण अनादि काल से क्षयोपशम रूप में परिणमन करते हैं। जीवत्व भाव को पारिणामिक भाव कहना वह शक्ति अपेक्षा से है और शक्ति का कभी नाश नहीं होता। परन्तु व्यक्त पर्याय समय २ में बदलती रहती है और इस व्यक्त पर्याय का

ही अनुभव होता है। उसी प्रकार भव्यत्व अभव्यत्व शक्ति रूप हैं परंतु वर्तमान में उस गुण का औदयिक रूप अवस्था है। एक साथ में दो भाव रूप व्यक्त पर्याय नहीं होती है। औपशमिक तथा क्षायिक भाव मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं होते।

शंका—मिथ्यात्व गुणस्थान में भावनिर्जरा होती है या नहीं?

समाधान—मिथ्यात्व गुणस्थान में भावनिर्जरा नहीं होती, क्योंकि जब तक अनंतानुबंधी का संवर न होवे तब तक भाव निर्जरा होती ही नहीं है। परंतु सविपाक व अविपाक नाम की द्रव्यनिर्जरा होती हैं।

शंका—सविपाक व अविपाक निर्जरा किन भावों में होती हैं?

समाधान—सविपाक निर्जरा औदयिक भावों में होती है और अविपाक निर्जरा उदीरणा भावों में होती है।

शंका—भाव निर्जरा किस गुण की पर्याय है?

समाधान—चारित्र गुण के अंश २ में शुद्धता का नाम भाव निर्जरा है।

शंका—सविपाक व अविपाक निर्जरा में कार्यकारण संबंध कैसा है।

समाधान—कर्म का उदय कारण है और तद्रूप आत्मा को फल देकर के उसका खिर जाना यह कार्य है। यह अवस्था समय २ में होती है जिसको अबुद्धिपूर्वक भाव कहा जाता है। अविपाक निर्जरा में आत्मा का बुद्धिपूर्वक रागादिक भाव कारण है और कर्म जो सत्ता में पड़े हैं काल की मर्यादा के पूर्व ही उनको उदयावली में लाकर खिरा देना यह कार्य है। अविपाक निर्जरा बुद्धि-पूर्वक अवस्था में ही होती है, क्योंकि ज्ञान की उपयोगावस्था में ही बुद्धिपूर्वक रागादिक होता है। परन्तु ज्ञान की लब्धिपूर्वक अवस्था में बुद्धिपूर्वक भाव तो होता नहीं है। उदीरणा भावों में आत्मा का पुरुषार्थ प्रधान है और कर्म गौण है। औदयिक भावों में कर्म प्रधान है और आत्मा की अवस्था पराधीन है जिसको निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहते है।

शंका—आर्तध्यान व रौद्रध्यान किन किन भावों में होते हैं।

समाधान---ये दोनों क्षयोपशमिक भावों में होते हैं अर्थात् ज्ञान की उपयोग रूप अवस्था में ही होते हैं जिसको उदीरणा भाव कहते हैं। इसलिए ज्ञान की उपयोग रूप अवस्था में आरोप करके आर्त व रौद्रध्यान को क्षयोपशमिक भाव कहा जाता है।

अज्ञानी जो लक्ष कोटि भवों में कर्मों की निर्जरा करता है वह ज्ञानी उच्छ्‌वास मात्र में करता है।

शंका—अज्ञानी किस प्रकार से कर्मों की निर्जरा करता है?

समाधान—अज्ञानी सविपाक तथा अविपाक निर्जरा करता है। सविपाक का नाम क्रम बद्ध निर्जरा है-और अविपाक निर्जरा का नाम अक्रम निर्जरा है। कहा भी है कि—"यदि ज्ञानी कर्म क्रम परिपाट्या बालतपौवैचित्र्योप क्रमेण च पच्यमानमुपात्त रागद्वेष तया सुखदुःखादि विकार भाव परिणतः पुनरा-रोपित संतानं भवशतसहस्त्र कोटिभिः कथंचन निस्तरति" इत्यादि—

अर्थ जो कर्म (अज्ञानी को) क्रम परिपाटी से तथा अनेक प्रकार के बालतपादि रूप उद्यमसे(अक्रम से) पकते हूये, रागद्वेषको ग्रहण किया होने से सुखदुःखादि विकार भाव रूप परिणमित्त होने से पुनः संतानको आरोपित करता जाय इस प्रकार लक्षकोटि भवों में ज्यों ज्यों करके (महाकष्ट से) अज्ञानी पार कर जाता है" इत्यादि। यहां क्रम परिपाटी का नाम सविपाक निर्जरा है जिसको क्रमवद्ध पर्याय कहते हैं और अनेक प्रकार के बालतपादिक का नाम अविपाक निर्जरा है जिसको अक्रम पर्याय कहते हैं। यहाँ आचार्य देव ने अक्रम शब्द का प्रयोग कर जो जीव

क्रमबद्ध ही पर्याय मानते हैं उनके मुख पर ताला लगा दिया है।

---

२ सासादन गुणस्थान

जो जीव सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थान की ओर जा रहा है परंतु मिथ्यात्व का उदय हुआ नहीं है परंतु अनंतानुबंधी का उदय है ऐसी अवस्था का नाम सासादन गुणस्थान है। इस गुणस्थान का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल ६ आवलीमात्र है। यह काल इतना सूक्ष्म है कि छद्मस्थ जीवों के दृष्टि में नहीं आता है।

शंका---सासादन गुणस्थान में पारिणामिक भाव क्यों माना गया है और वह कौन सा है?

समाधान---इस गुणस्थान में मिथ्यात्व कर्म का उदय नहीं है। आत्मा के सब गुण समय समय पर परिणमन होते रहते हैं। इस कारण से मिथ्यात्व प्रकृति का उदय न होने पर भी श्रद्धा नामक गुण ने पारिणामिक भाव से मिथ्यात्व रूप परिणमन किया है। इस कारण श्रद्धा की अपेक्षा से सासादन गुणस्थान में पारिणामिक

भाव माना गया है।

शंका---सासादन गुणस्थान में अनंतानुबंधी का उदय है और पारिणामिक भाव से मिथ्यात्वरूप परिणमन किया है। तब वहाँ सोलह प्रकृतियों का बंध पड़ता है या नहीं?

समाधान--- पारिणामिक भाव द्रव्यानुयोग मानता है। द्रव्यानुयोग में करणानुयोग का अभाव है। करणानु योग में ही कर्म का बंध, उदय, सत्ता आदि होती हैं किन्तु द्रव्यानुयोग इन्हें स्वीकार नहीं करता। इस कारण से सासादन गुणस्थान में पारिमाणिक भाव से मिथ्यात्व रूप परिणमन करने पर भी १६ प्रकृतियों का बंध नहीं होता इसीका नाम पारिणामिक भाव है।

शंका---सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

समाधान---प्रथम गुणस्थान में ११७ प्रकृतियों का बंध होता था, उनमें से १६ की व्युच्छित्ति हो जाने से १०१ प्रकृतियों का बंध इस गुणस्थान में होता है। वे सोलह प्रकृतियाँ निम्नलिखित हैं--१ मिथ्यात्व, २ हुंडक संस्थान, ३ नपुंसक वेद, ४ नरकगति, ५ नरकगत्यानु पूर्वी, ६ नरकायु, ७ असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, ८ एकेन्द्रिय जाति, ९ दो इन्द्रिय जाति, १० त्रेन्द्रिय

जाति, ११ चतुरेन्द्रिय जाति, १२ स्थावर, १३ आताप, १४ सूक्ष्म, १५ अपर्याप्त, १६ साधारण। इन सोलह प्रकृतियों का बंध सासादन गुणस्थान में नहीं होता।

शंका--व्युच्छित्ति किसे कहते हैं ?

समाधान--जिस गुणस्थान में कर्म प्रकृतियों का बंध उदय, तथा सत्ता की व्युच्छित्ति की हो, उस गुणस्थान तक ही इन प्रकृतियों का बंध, उदय, सत्ता पाये जाते हैं। आगे के किसी भी गुणस्थान में उन प्रकृतियों का बंध, उदय, सत्ता नहीं होते हैं। इसीका नाम व्युच्छित्ति है।

शंका--सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है ?

समाधान--प्रथम गुणस्थान में जिन ११७ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन ५ प्रकृतियों की मिथ्यात्व गुणस्थान की व्युच्छित्ति घटाने पर ११२ प्रकृतियाँ शेष रही परन्तु नरकगत्यानुपूर्वी का इस गुणस्थान में उदय नहीं होता इसलिए इस गुणस्थान में १११ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका--इस गुणस्थान में सत्ता कितनी प्रकृतियों की होती हैं ?

समाधान--१४५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है। यहाँ

पर तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन की सत्ता नहीं रहती।

शंका---इस गुणस्थान में ५ भावों में से कौन कौन से भाव किस आपेक्षा से होते हैं।

समाधान---चारित्रगुण, क्रियागुण, योगगुण तथा प्रदेशत्व आदि गुण का औदयिक भाव है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण, तथा वीर्य गुण का क्षयोपशमिक भाव है। श्रद्धा गुण का पारिणामिक भाव से मिथ्यात्व रूप परिणमन हुआ है। जीवत्व, भव्यत्व, शक्ति रूप पारिणामिक भाव हैं। औपशमिक, क्षायिक भाव इस गुणस्थान में नहीं होते।

---

३ मिश्र गुणस्थान

मिश्र गुणस्थान में, अंश में सम्यक्त्व और अंश में मिथ्यात्वरूप मिश्रभाव से रहता है। दही में शक्कर मिली हुई श्रीखण्ड की तरह मिश्र स्वाद आता है। जब आत्मा सम्यग्दर्शन से गिरती है तब मिश्र प्रकृति का उदय होता है तभी मिश्र गुणस्थान होता है। मिश्र गुण स्थान का काल सासादन गुणस्थान के काल से अधिक

काल का है। फिर भी वह इतना सूक्ष्मकाल है कि वह छद्मस्थ के ज्ञानगोचर नहीं है। मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं है। कहा भी है कि—

ण य मरइ णेय संजममुवेइ तह देश संजम वावि।
सम्मामिच्छादिट्ठीण उ मरणंत समुग्घाओ ॥

अर्थ—सम्यग-मिथ्यादृष्टि जीव न मरता है, न संयम को प्राप्त होता है, न देश संयम को प्राप्त होता है तथा उसके मारणान्तिक समुद्घात भी नहीं होता है।

शंका—इस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है।

समाधान—द्वितीय गुणस्थान में बंध १०१ प्रकृतियों का था, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृतियाँ १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ स्त्यानगृद्धि, ६ निद्रा-निद्रा, ७ प्रचला-प्रचला, ८ दुर्भग, ९ दुस्वर, १० अनादेय, ११ न्यग्रोध संस्थान, १२ स्वाति संस्थान, १३ कुब्जक संस्थान, १४ वामन संस्थान, १५ बजनाराच संहनन, १६ नाराच संहनन, १७ अर्द्धनाराच संहनन, कीलित संहनन, १९ अप्रशस्त विहायोगति, २० स्त्रीवेद २१ नीचगोत्र, २२ तिर्यंच गति, २३ तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, २४ तिर्यंचायु, २५ उद्योत मिलकर २५ को घटाने पर शेष ७६ रहीं परन्तु इस गुणस्थान में किसी

भी आयु का बंध नहीं होता अतः ७६ में से मनुष्यायु, देवायु इन दो के घटाने पर ७४ प्रकृतियों का बंध होता है। नरकायु की प्रथम गुणस्थान में और तिर्यंचायु की दूसरे गुणस्थान में व्युच्छित्ति हो चुकी है।

शंका—इस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

समाधान—दूसरे गुणस्थान में १११ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छित्ति अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, एकेन्द्रियादि चार जाति, १ स्थावर मिलकर ९ प्रकृतियों के घटाने पर शेष १०२ रहीं, उन में से नरकागत्यानुपूर्वी के बिना तीन आनुपूर्वी के घटाने पर शेष ९९ प्रकृतियाँ रहीं और १ सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय यहाँ आ मिला इस कारण इस गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका—इस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान—तीर्थंकर प्रकृति के बिना १४७ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका—इस गुणस्थान में ५ भावों में से कितने भाव हैं?

समाधान—इस गुणस्थान में क्रिया गुण, योगगुण,

प्रदेशत्वगुण के औदयिक भाव हैं। श्रद्धागुण, चारित्र-गुण, वीर्यगुण, ज्ञानगुण, दर्शन गुण का क्षयोपशमिक भाव हैं। जीवत्व व भव्यत्व नामक शक्ति रूप पारिणामिक भाव हैं। इस गुणस्थान में औपशमिक तथा क्षायिक भाव नहीं है।

---

४ अविरत-सम्यक्त्व

चतुर्थ गुणस्थान में जीव को नियम से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। इस गुणस्थान में औपशमिक सम्यक्त्व होता है, क्षयोपशमिक तथा क्षायिक सम्यक्-दर्शन भी होता है। एक जीव की अपेक्षा से एक ही सम्यग्दर्शन होगा। अविरति-सम्यग्दृष्टि जीव पर पदार्थों में इष्टानिष्ट कल्पना नहीं करता है परन्तु अपने रागादिक भावों को ही दुख का हेतु मानता है और सुख का कारण केवल मात्र वीतराग भाव ही है। अन्तरंग में अनंतानुबंधी कषाय के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होने पर भी बाह्य में बुद्धिपूर्वक रागादिक छोड़ नहीं सकता अर्थात् त्रस व स्थवार जीवों के मारने के भावों का यमरूप त्याग कर नहीं सकता।

सम्यग्दृष्टि आत्मा बाह्य में मनुष्यपर्याय में मूलगुण धारण करता है अर्थात् माँस, मदिरा, मधु और पंच उदम्बर फलों के सेवन का त्याग करता है। फिर भी उनके अतिचार अवश्य ही लगते हैं। कभी २ अनछना पानी भी पी लेता है, क्योंकि उस प्रकार के व्यवहार का राग अभी छूटा नहीं है। सप्तव्यसन का सम्पूर्ण तौर से त्याग नहीं हो पाया है। प्रसंग पड़ जाने पर जुआ भी खेल लेता है जैसे युधिष्ठिर महाराज ने जुआ खेला था यद्यपि वह सम्यग्दृष्टि और चरम शरीरी भी थे फिर भी इस पर्याय में उस व्यवहार का राग रह सकता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा को अमर्यादित खाद्य पदार्थों के खाने का भी भाव हो जाता है। बाजार की मिठाई, विदेशी दवा के सेवन का भी राग हो सकता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा को श्रद्धा की अपेक्षा से सप्त भय नहीं हैं परन्तु चारित्र की अपेक्षा से भय है। सम्यग्दृष्टि आत्मा द्वारा मायाचारी का भाव भी हो जाता है जैसे रामचन्द्रजी ने सीता को कहा 'आप तीर्थक्षेत्र की वंदनार्थ पधारो' और इस आड़ में सीता को एकाकी छोड़ देने का आदेश अपने सेनापति को दिया। यही मायाचारी का भाव है। सम्यग्दृष्टि आत्मा से संकल्पी हिंसा भी हो जाती है अर्थात् निरपराधी को मारने का भाव भी हो जाता है।

जसे रावण को निमित्त ज्ञानी ने कहा कि अयोध्या के राजा दशरथ के घर राम व लक्ष्मण का जन्म होगा और मथुरा नगरी के राजा जनक के घर सीता का जन्म होगा एवं सीता की शादी राम के साथ में होगी और तुम्हारे द्वारा सीता के हरण करने से लक्ष्मण के हाथ से तुम्हारा मरण होगा। यह बात सुनकर रावण ने अपनी सभा में घोषित किया कि ऐसा कोई वीर पुरुष है जो दशरथ तथा जनक को जान से मार देवे 'न रहे बांस, न बजे बांसुरी'। यह सुनकर विभीषण जो सम्यग्दृष्टि आत्मा है, उसने अपने बड़े भ्राता से कहा कि हे भाई, यह जन्म मरण का प्रश्न है। इस कारण से मैं दूसरे आदमी पर भरोसा न करके स्वयं ही दशरथ व जनक को जान से मार दूंगा। जब यह बात हो रहीं थी तब सभा में नारद जी भी विराजमान थे, वे वहां से उठकर आकाशगमन द्वारा अयोध्या आये और राजा दशरथ से कहा कि तेरे घर राम-लक्ष्मण का जन्म होगा जिनके द्वारा रावण का मरण होने वाला है। ऐसा निमित्त ज्ञानी के कहने से विभीषण तुमको और जनक को मारने के लिए लंका से रवाना हो चुका है। तुम सावधान हो जाओ। तब अयोध्या के मंत्री वर्ग ने ऐसा निर्णय किया कि दशरथ राजा गुप्त भेष में अयोध्या से बाहर चले जायें और

गद्दी पर राजा दशरथ का पुतला बनाकर रखा जाय जिसे देखकर विभीषण भ्रम से पुतले को मारकर संतोष कर लेगा। यह निश्चित होने के बाद नारद से कहा 'महाराज', आप मथुरा जाकर के जनक को सावधान कर दीजिए और वह भी अपना पुतला बना करके गुप्त भेष से बाहर निकल जावें। थोड़े दिनों के बाद विभीषण ने अपना विमान अयोध्या नगरी के निकट आकाश में खड़ा करके राजदरबार में दशरथ को सिंहासन के ऊपर बैठा देखकर आकाश से ही बाण मारके गिरा दिया। यह मारना संकल्पी हिंसा है। उसी प्रकार भरत तथा बाहुबलि सम्यग्दृष्टि आत्मा हैं, मोक्षगामी हैं, तो भी कषाय के कारण दोनों में युद्ध हुआ यद्यपि वह नीतिपूर्ण थे। तीनों युद्धों में भरतजी हार गए और कषाय के आवेश में आकर निरपराधी बाहुबलि पर चक्र चला दिया। यह भी संकल्पी हिंसा है। नरकों में विशेष करके संकल्पी हिंसा ही होती है। अव्रत सम्यग्दृष्टि आत्मा में तीव्र कषाय भी होती है जिसे उत्कृष्ट कृष्णलेश्या कही जाती है और मंदतम कषाय भी होती है जिसको परम शुक्ल लेश्या कहते हैं। इसी प्रकार कषाय की तारतम्यता रहती है। सब सम्यग्दृष्टि जीव के चतुर्थ गुणस्थान में संवर समान है, फिर भी भावनिर्जरा में महान् अन्तर भी होता है।

जिस मनुष्य ने सम्यग्दर्शन होने के पूर्व मिथ्यात्वावस्था में मनुष्य, तिर्यंचायु, का बंध बांध लिया है, बाद में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की है ऐसा जीव यदि उसने मनुष्य तिर्यंच की आयु का बंध बांधा हो तो वह भोग भूमि में ही जावेगा परन्तु विदेह क्षेत्र में सम्यग्दृष्टि आत्मा जाते नहीं है। क्योंकि उसने महान् सातिशय पुण्य का बंध बांधा है जिसके भोगने का स्थान कर्मभूमि न होकर भोग भूमि तथा स्वर्ग ही है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य मरकर सीधा विदेह क्षेत्र में मनुष्य बन सकता है। जिस जीव ने नरकायु का बंध बांधा है, बाद में सम्यग्यदर्शन की प्राप्ति की है वह पहले नरक में ही जाता है, आगे नहीं जाता। सम्यग्दृष्टि आत्मा में निश्चय धर्म ध्यान होता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीवों को निश्चय-धर्म-ध्यान कभी नहीं होता है। सूत्रजी में धर्म ध्यान के चार पाये दिखाए है—१ आज्ञा-विचय, २ अपाय-विचय, ३ विपाक-विचय ४ संस्थान-विचय। यह चारों व्यवहार धर्मध्यान है अर्थात् पुन्यभाव हैं। ऐसे व्यवहार धर्म का पालन अभव्य मिथ्यादृष्टि भी करता है परन्तु निश्चय धर्म ध्यान मिथ्यादृष्टि को कभी नहीं होता।

शंका—निश्चय धर्म ध्यान किसे कहते हैं ?

समाधान—अनन्तानुबन्धी कषाय का चले जाना

धर्म ध्यान का प्रथम पाया है, अप्रत्याख्यान कषाय का अभाव होना धर्म ध्यान का दूसरा पाया है। प्रत्याख्यान कषाय का अभाव होना धर्म ध्यान का तीसरा पाया है, और प्रमाद का अभाव होना धर्मध्यान का चतुर्थ पाया है। इसी प्रकार धर्म ध्यान चतुर्थ गुणस्थान से लेकर ७ वें गुणस्थान तक रहता है। यह परमार्थ रूप से धर्म ध्यान का स्वरूप है।

शंका—मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के तीन टुकड़े कब होते हैं?

समाधान—जिस समय आत्मा मिथ्यात्व भावों को दूर करके औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति करती है। उसी समय मिथ्यात्व कर्म प्रकृति के तीन टुकड़े हो जाते हैं।

शंका—प्रथमोपशम सम्यक्त्व कब और कौन प्राप्त करता है?

समाधान—दर्शन मोहनीय को उपशमता हुआ जीव चारों गतियों में उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति कर सकता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है पर असंज्ञी जीव उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता। संज्ञी जीवों में ही गर्भज जीव उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है पर सम्मूर्छन

जीव सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करता। संज्ञी गर्भज जीवों में पर्याप्तिक जीव उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करते हैं परन्तु अपर्याप्तिक अवस्था में सम्यग्दर्शन नहीं होता। संख्यात वर्ष की आयुवाले और असंख्यात वर्ष की आयुवाले जीव भी उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करते हैं। धवलग्रन्थ खण्ड ६ पृष्ठ २३९ में कहा है कि

"सायारे पट्ठवओ णिट्ठवओ मज्झिमोय भयणिज्जो।
जोगेअण्णदरम्मि दु जहण्णाए तेउलेस्साए ॥

अर्थ—साकार अर्थात् ज्ञानोपयोग की अवस्था में जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व का प्रस्थापक अर्थात् प्रारंभ करने वाला होता है किन्तु निष्ठापक अर्थात् उसे सम्पन्न करने वाला मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है अर्थात् वह साकार उपयोगी भी हो सकता है और अनाकार उपयोगी भी हो सकता है। मनोयोग आदि तीनों योगों में से वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है तथा तेजोलेश्या के जघन्य अंश में वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

नोट—इस गाथा के अनुसार सम्यक्त्व की प्राप्ति वर्तमान जीव करता है तथा तेजोलेश्यादि जघन्य अंश में प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि सप्तम नरक में उत्कृष्ट

कृष्णलेश्या के होने पर भी जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। यही बात धवलग्रन्थ नं० ६, पृ० २०७ में लिखा हैं कि—

"कृष्णादि छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्या-वाला जीव प्रथमोपशम सम्यकत्व की प्राप्ति कर सकता है किन्तु यदि अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होनी चाहिए और शुभ लेश्या हो तो वर्द्धमान होनी चाहिए"।

शंका—प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति मनुष्य कब कर सकता है?

समाधान—मिथ्यादृष्टि मनुष्य पर्याप्तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले आठ वर्ष से लेकर उसके ऊपर किसी समय भी उत्पन्न कर सकते है। इससे नीचे के काल में नहीं कर सकते। धवल ग्रं० ६, पृष्ठ ४२९।

शंका—देवों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति कब होती है?

समाधान—पर्याप्तकों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव अन्तर्मूहूर्त काल से लेकर उस से ऊपर तक उत्पन्न कर सकते हैं, उससे नीचे के काल में नहीं कर सकते हैं। क्योंकि पर्याप्तक काल के प्रथम

समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक तीन प्रकार के करण परिणामों का अभाव पाया जाता है। धवलग्रन्थ ६, पृष्ठ ४३१।

शंका----संज्ञी तिर्यंचों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व कौन प्राप्त कर सकता है?

समाधान----संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करने वाले जीव गर्भज ही होते हैं सम्मूर्छन नहीं होते।

शंका-----नरकों में प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति कब होती है?

समाधान----पर्याप्तक होने के बाद अन्तर्मुहूर्त काल से लेकर ऊपर-ऊपर कर सकते हैं, उससे नीचे काल में नहीं कर सकते हैं। क्योंकि अन्तर्मुहूर्त काल के बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व उत्पन्न करने योग्य विशुद्धि की उत्पत्ति का अभाव होता है।

शंका----औदारिक-मिश्र-काययोगी जीवों में उपशम सम्यक्त्व होता है या नहीं?

समाधान----नहीं होता है। क्योंकि चारों गतियों के उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों का मरण न होने से औदारिक मिश्रकाययोग में उपशम सम्यक्त्व का सद्भाव नहीं पाया जाता।

शंका----उपशम श्रेणी पर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवों के उपशम सम्यक्त्व के साथ में तो मरण पाया जाता है ?

समाधान----यह कथन सत्य है किन्तु उपशम श्रेणी में मरने वाले जीव उपशम सम्यक्त्व के साथ औदारिक मिश्र काययोगी नहीं होते है; क्योंकि देवगति को छोड़ कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती है। धवल ग्रं० ५ पृ० २१९।

शंका----दर्शन मोह के क्षय का आरम्भ कहाँ होता है ?

समाधान----अढ़ाई द्वीपों में स्थिति कर्म भूमियों में जहाँ जिस काल में केवली तथा श्रुतकेवली होते हैं, वहाँ उस काल में मनुष्य आरम्भ करता है।

नोट---यह कहना औपचारिक है; क्योंकि जिस जीव ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध बांधा है वह जीव प्रथम नरक से तीसरे नरक तक मिथ्यात्वावस्था में ही जाता है और वहाँ जाने के बाद अन्तर्मुहूर्त काल के बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है। ऐसे जीव जब नरक में से निकल कर तीर्थंकर बनते है, वह जीव अन्य केवली और श्रुतकेवली के पास नहीं जाता है। और उस जीव को क्षायोपशमिक दर्शन ही है, तब वह क्षायिक

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कब करेगा ? क्षायिक सम्यक्दर्शन हुए बिना श्रेणी मांड़ नहीं सकते और उस पर्याय में उसे तीर्थंकर बनना होता है। अतः अपने विशुद्ध भावों द्वारा दर्शन मोहनीय का नाश करके वह क्षायिक सम्यक् दर्शन की प्राप्ति करता है इससे सिद्ध होता है कि केवली या श्रुतकेवली के निकट ही रहने से क्षायिक सम्यक्त्व होता हो सो बात नहीं है।

शंका—किस काल में दर्शन मोह का क्षय हो सकता है ?

समाधान----दुषमा, दुषमा-दुषमा, सुषमा-सुषमा और सुषमा काल में उत्पन्न हुए जीवों को ही दर्शन मोहनीय की क्षपणा नहीं होती हैं। शेष बचे सुषमा-दुषमा और दुषमा-सुषमा काल में उत्पन्न हुए जीवों के दर्शन मोहनीय की क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्याय से आकर (इस अवसर्पिणी काल) तीसरे काल में उत्पन्न हूए वर्धनकुमारादिक के दर्शन मोहनीय की क्षपणा देखी जाती है। जो इस भव मैं तीर्थंकर या जिन होने वाले हैं वे तीर्थंकरादिक की अनुपस्थिति में तथा सुषमा दुषखा काल में भी दर्शन मोहनीय का क्षपण करते है। उदाहरणार्थ- कृष्णादि (धवलग्रन्थ ६, पृष्ठ २४७)

शंका--सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति कहाँ कहाँ नहीं

होती है ?

समाधान—सम्यग्दृष्टि जीव भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव, द्वितीयादि छह पृथ्वी के नारकी, विकलत्रय, लब्ध्यापर्याप्तक और स्त्रीवेदियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। (धवल ग्रं० ५ पृष्ठ २१५)

शंका—क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य व उत्कृष्ट कितने काल तक संसार में रहते हैं ?

समाधान—क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कम से कम अन्तमुहूर्त काल तक और अधिक से अधिक सातिरेक ३३ सागरोपम प्रमाण काल तक रहते हैं।

शंका—कौनसा जीव पंचम गुणस्थान को स्पर्श किए बिना सीधे ७ वे गुणस्थान में जाता है ?

समाधान----सभी तीर्थंकर तथा सभी क्षायिक सम्यग्दृष्टि आत्माओं में पंचम गुणस्थान का भाव नहीं होता है परन्तु मुनिपर्याय का ही भाव होता है अर्थात् वे जीव अणुव्रत को धारण न करके पंचमहाव्रत ही धारण करते हैं। (ध० ग्रं० ५, पृ० २५६)

शंका---चतुर्थ गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है ?

समाधान—तीसरे गुणस्थान में ७४ प्रकृतियों का बंध होता है जिनमें मनुष्यायु, देवायु, तीर्थंकर प्रकृति

मिलाने से ७७ प्रकृतियों का बंध होता है।

शंका—चतुर्थ गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान—तीसरे गुणस्थान में १०० प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से सम्यक्त्व-मिथ्यात्व प्रकृति के घटाने पर ९९ प्रकृतियाँ रहीं इनमें चार आनुपूर्वी व एक सम्यक्त्व-प्रकृति इन पांच को मिलाने पर १०४ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका—चतुर्थ गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान—१४८ प्रकृतियों की सत्ता रहती है। परंतु क्षायिक सम्यग्दृष्टि के १४१ की ही सत्ता है।

शंका—चतुर्थ गुणस्थान में पांच भावों में से कौन२ से भाव हैं?

समाधान---गति, लेश्या और असिद्धत्व की अपेक्षा से अर्थात् क्रिया, योग, प्रदेशत्व गुण की अपेक्षा से औदयिक भाव हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य की अपेक्षा से तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा से क्षायोपशमिक भाव हैं। श्रद्धा की अपेक्षा से यदि औपशमिक सम्यक्त्व है तो उपशम भाव है, अगर क्षायिक सम्यक्त्व है, तब क्षायिक भाव है तथा जीवत्व व भव्यत्व पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं।

५—देशविरत

इस गुणस्थान में अनंतानुबंधी तथा अप्रत्याख्यान कषाय के अभाव रूप वीत राग भाव है और बाह्य में जो व्यवहार आचरण करता है, उसीका नाम देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान में त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का राग छूट जाता है परन्तु स्थावर जीवों की हिंसा का राग नहीं छूटता है। इस कारण से इसे देश संयम कहा है। चतुर्थ गुणस्थान में अष्ट मूलगुणों का पालन करता था पर उनमें अतिचार लगते थे। किन्तु अब इतना निर्मल परिणाम हुआ कि निरतिचार होकर जीव अष्ट मूलगुणों का पालन करता है। चतुर्थ गुणस्थान में सप्तव्यसन में दोष लग जाता था, अब इतने निर्मल परिणाम हुये कि सप्तव्यसनों का सम्पूर्ण रीति से त्याग हो जाता है। चतुर्थ गुणस्थान में बिना छना पानी पीने का भाव हो जाता था, रात्रि में चारों प्रकार के आहार के लेने का भाव होता था, अमर्यादित खाद्य पदार्थ तथा औषधि का सेवन करता था पर अब इतना निर्मल परिणाम हुआ कि अन छना जल पीने का भाव होता ही नहीं है। रात्रि में चारों प्रकार के आहार के लेने का भाव होता ही नहीं है, अमर्यादित आहार तथा औषधि

सेवन का भाव होता ही नहीं है। इस गुणस्थान के ग्यारह भेद हैं जिनको प्रतिमा कहते हैं। १ दर्शनप्रतिमा २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ प्रोषध प्रतिमा, ५ सचित्तभक्षण त्याग प्रतिमा, ६ छटी प्रतिमा के दो भेद होते हैं १ पुरुष के लिए रात्रिभुक्ति अनुमोदना त्याग प्रतिमा, २ स्त्रियों के लिए दिवस मैथुन त्योग प्रतिमा।

शंका—ये दो भेद कैसे होते हैं?

समाधान—इस प्रतिमा में अब्रह्मसेवन का त्याग नहीं होता है। स्त्री रात्रि में भोजन की अनुमोदना का त्याग नही कर सकती है, क्योंकि अपने वच्चे को रात्रि में दूध, जलादि पिलाती है। इस कारण से रात्रिभुक्ति अनुमोदना का सम्पूर्णतया त्याग नहीं कर सकती है। किन्तु इतनी उदासीन है कि दिन में मैथुन करने का भाव होता ही नहीं है।

७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८ आरम्भ त्याग प्रतिमा, ९ परिग्रह त्याग प्रतिमा, १० अनुमति त्याग प्रतिमा, ११ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा। पहली प्रतिमा से छटी प्रतिमा तक जघन्य श्रावक पद है, सप्तम प्रतिमा से नववीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक पद है, दसवीं व ग्यारहवीं प्रतिमा वाले जीव उत्कृष्ट श्रावक पदधारी कहलाते हैं।

शंका—दर्शन प्रतिमा का क्या स्वरूप है?

समाधान—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव को अष्टमूल गुणों में अतिचार लगते थे परन्तु दर्शन प्रतिमारूप भाव होने से अष्टमूल गुण में अतिचार भी नहीं लगते अर्थात् अभक्ष्य का त्याग कर वह अपनी जिव्हा इन्द्रिय को वश में करता है।

शंका---अभक्ष्य पदार्थ किसे कहते हैं ?

समाधान—अभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं---१ स्थावर अभक्ष्य, २ त्रस अभक्ष्य। इन दोनों अभक्ष्यों में महान् अन्तर है अर्थात् जितना सराग देव व वीतराग देव में अन्तर है उतना ही अंतर स्थावर अभक्ष्य व त्रस अभक्ष्य में है।

शंका---स्थावर अभक्ष्य किसे कहते हैं ?

समाधान---जिस वनस्पति में अनन्त जीवराशि है। जैसे--कांदा, आलू आदि जमींकन्द तथा जो वनस्पति खाने से शरीर में बाधा आने की संभावना है जैसे--अजान फल, बहुबीजा फल अर्थात् जिसमे नशा उत्पन्न करने की शक्ति है जैसे--भांग, अफीम, चीरफल आदि पदार्थों को अभक्ष्य कहा जाता है। इन अभक्ष्यों में जीवदया तथा संयमभाव की विराधना न होवे इसका लक्ष्य होने से उदासीन श्रावक ऐसे पदार्थ खाने का राग छोड़ देता है।

शंका—त्रस अभक्ष्य किसे कहते हैं ?

समाधान---जिनमें प्रत्यक्ष त्रसजीव देखने में न आवें परंतु आगमप्रमाण से त्रस जीव हैं ऐसे पदार्थ तथा जिनमें प्रत्यक्ष त्रस जीव की काय हो ऐसे पदार्थों का नाम त्रस अभक्ष्य कहा जाता है। त्रस अभक्ष्य किसी काल में भक्ष्य नहीं हो सकता परंतु स्थावर अभक्ष्य भक्ष्य हो सकता है।

शंका—त्रस अभक्ष्य वाले कौन २ से पदार्थ हैं ?

समाधान---बहुत से पदार्थ हैं जैसे—

१ कच्चे जल को छानने के बाद दो घड़ी तक उसमें त्रस की उत्पत्ति नहीं होती ऐसा जल दो घड़ी बाद अभक्ष्य हो जाता है। कच्चे जल को छानने के बाद साधारण गरम करने से अथवा लौंग, सौंफ आदि मसालों से रंग बदला जावे तो वह जल २ पहर तक यानी ६ घन्टे तक भक्ष्य है, बाद में त्रस जीवों के उत्पन्न होने से अभक्ष्य हो जाता है। कच्चे जल को छानने के बाद यदि उसे उबाला जावे तो वह जल ८ पहर तक यानी २४ घन्टे तक भक्ष्य है, बाद में उसमें त्रस जीवों के उत्पन्न होने से अभक्ष्य हो जाता है। वर्तमान में अमुक लोग साधारण गर्म किए जल की चार पहर की मर्यादा मानते है, यह मान्यता गलत है, क्योंकि जल की २ पहर, ८ पहर छोड़ के चार पहर की मर्यादा होती नहीं है।

२ अगहन वदी एकम से फाल्गुन सुदी पूनम तक

आटा एवं धनियाँ, मिर्च आदि पीसे हुए मसालों की मर्यादा ७ दिन की है, बाद में अभक्ष्य हो जाता है। चैत्र वदी एकम से अषाढ़ शुक्ला पूनम तक आटा, मसाले आदि की मर्यादा पाँच दिन की है, बाद में अभक्ष्य हो जाता है। श्रावण वदी एकम से कार्तिक शुक्ला पूनम तक आटा, मसाले की मर्यादा ३ दिन की है, बाद में अभक्ष्य हो जाता है।

(३) रोटी, दाल, खिचड़ी, साग आदि की मर्यादा २ पहर की यानी छह घण्टे की है, बाद में अभक्ष्य हो जाता है। पूड़ी, भुजिया, पूआ, परावटे आदि की मर्यादा ४ पहर यानी १२ घण्टे की है, बाद में अभक्ष्य होजाता है। कठोर (पोरसी) पूड़ी, सेव आदि जिनको खाते समय दाँत के साथ आवाज हो ऐसे नमकीन पदार्थों की मर्यादा २४ घण्टे की है। बाद अभक्ष्य हो जाता है। जिस मिठाई में जल या दूध हो ऐसी मिठाई की मर्यादा २४ घण्टे की है। दूध के मावे की मर्यादा २४ घण्टे की है परंतु उस मावे को लाल किए बाद जब उसमें से घी निकल जावे तब उस मावे की मर्यादा आटे जितनी हो जाती है अर्थात् ७ दिन, ५ दिन, ३ दिन, की। जिस मिठाई में जल या दूध नहीं है परन्तु मात्रघृत शुद्ध शक्कर एवं आटा ही ऐसी मिठाई की मर्यादा आटे

की तरह ७ दिन, ५ दिन, तथा ३ दिन की है। पापड़ अचार आदि की मर्यादा २४ घण्टे की है।

(४) गाय, भैंस, बकरी आदि के थनों को शुद्ध जल से धो लेने के बाद आपके सामने निकाले हुए दूध को तुरन्त छान कर २ घड़ी के भीतर में उस दूध को गरम किया जाने से उसकी मर्यादा २४ घन्टे की है। ऐसे दूध को विना जामन से (नारियल से) जमाये हुए दही की मर्यादा, जिस दिन दूध जमाया है उसके दूसरे दिन तक की है, बाद में वह अभक्ष्य, हो जाता है, ऐसे दही की बनाई हुई छाछ की मर्यादा १२ घन्टे की है, ऐसे छाछ में से निकाले हुए मक्खन को तुरन्त तपाकर बनाए हुए घृत की मर्यादा जब तक उस घृत की गंध आदि न बदल जावे तब तक की है। उदासीन श्रावक ऐसा दूध, दही, घृत खाता है। ऐसी वस्तु न मिले तो उसे खाने का राग होता ही नहीं है।

(५) बाजारू मिल की शक्कर या गुड़ अभक्ष्य ही है, ऐसे अभक्ष्य पदार्थ खाने का राग उदासीन श्रावक को होता ही नहीं है। परन्तु गन्ने में से रस अपने सामने निकाल कर उस रसको छान कर उस रसका गुड़ या शक्कर बनाया जावे तो वह गुड़ या शक्कर उदासीन श्रावक लेते हैं। ऐसे गुड़ व शक्कर की मर्यादा जब तक

रसचलित न हो जावें तब तक की है।

(६) घानी (कोल्हू) को प्राशुक जल से धोने के बाद तिलादिक को शोधकर अपने प्रासुक जल के द्वारा उस तिलादिक में से तेल निकाला जावे तो ऐसा तेल उदासीन श्रावक लेते हैं। बाजारू तेल अभक्ष्य है। शुद्ध तेल की मर्यादा उसके रूपरसादिक के बदल जाने से अभक्ष्य हो जाता है।

(७) समुद्र के पानी का बनाया हुआ नमक अभक्ष्य ही है। क्योंकि उसमें त्रस जीव की काय रह जाती है। अतः अभक्ष्य है। पहाड़ का सेंधा नमक उदासीन श्रावक लेते हैं।

(८) अमर्यादित देशी दवा एवं विदेशी दवा खाने का राग उदासीन श्रावक को होता ही नहीं है। इस प्रकार जिस श्रावक ने अपनी जिव्हा इन्द्रिय को जीत लियो है ऐसे श्रावक का नाम दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक है।

---

२ व्रत प्रतिमा

शंका—व्रत प्रतिमा का स्वरूप क्या है ?

समाधान—जो उदासीन श्रावक पंचाणुव्रत, तीनगुण

व्रत, चार शिक्षाव्रत को धारण करे उसीका नाम व्रत प्रतिमा है। व्रत प्रतिमाधारी श्रावक दृढ़चित्तवान् है, पांच पापों से भयभीत है।

शंका—अहिंसाणुव्रत का क्या स्वरूप है ?

समाधान—जो श्रावक त्रस जीवों को मन, वचन, काय द्वारा मारने का भाव नहीं करता है न दूसरे के द्वारा घात करवाता है और जो दूसरे जीव घात करते है उसे अच्छा भी नहीं मानता है। ऐसे अहिंसाणुव्रति श्रावक में त्रस जीवों की हिंसा का राग छूट जाता है परन्तु स्थावर जीवों की हिंसा का राग नहीं छूटता है तो भी विवेक पूर्वक आचरण करता है। कैसा है वह उदासीन श्रावक ? व्यापारादिक कार्यों में दयासहित जिसकी प्रवृत्ति है, न्यायसहित धनोपार्जन करता है, अन्तरंग में ऐसा भाव भी छोड़ने को चाहता है। उदासीन श्रावक ऐसा धंधा नहीं करता है जिनमें महान् हिंसा होती हो। जैसे—कत्ल खाना खुलवाना, मिले चलवाना, चमड़े आदि का व्यापार करना, मछली आदि पकड़ने की मशीने बनवाना, लोहे का व्यापार जैसे-छुरी, कटारी, तलवार, रिवोल्वर, बन्दूक, मशीनगन, बम आदि का व्यापार करने का भाव होता ही नहीं है। जंगल की ठेकेदारी का भाव, लकड़ी, कोयले आदि व्यापार का भाव, हलवाई के व्यापार का भाव,

होटल आदि व्यापार का भाव, हेअरकटिंग सेलून आदि का व्यापार करने का भाव, साबुन का कारखाना बनाने का भाव, मांस, मदिरा, सूखी मछलियाँ, मछली तेल का व्यापार करने का भाव, अचार मुरब्बा आदि व्यापार करने का भाव होता ही नहीं है। क्योंकि ये सब हिंसक भाव है। ऐसे भाव उदासीन श्रावक में होते ही नहीं है। जिनमें हिंसा कम हो, नीति से जीविका चला सके ऐसा व्यापार करते हुए भी सब व्यापार छोड़कर धर्म-साधना में अपना समय निरन्तर लगाऊँ ऐसी भावना वह सदा रखता है। व्यापारादि में जो पापरूप प्रवृत्ति होती है उसका उदासीन श्रावक को दुःख होता है इस कारण से अपनी निन्दा करता है। गुरू के पास जाकर अपने पापों की प्रतिक्रमण, आलोचना, और प्रायश्चित आदि करता है।

शंका—सत्याणुव्रत का क्या स्वरूप है?

समोधान—उदासीन श्रावक को स्थूल झूठ बोलने का भाव नहीं होता है। उदासीन श्रावक को कठोर वचन निष्ठुर वचन, हिंसा का वचन दूसरे की चुगली का वचन, दूसरेकी गुह्य बातों को प्रगट करने का भाव होता ही नहीं है। उदासीन श्रावक अपने और दूसरे की हितरूप सद्धर्म की प्रभावना रूप वचन बोलते हैं। फिर भी ऐसे वचनों से भी उदासीन होकर कभी-कभी मौन भी धारण करते हैं।

शंका—अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

समाधान—उदासीन श्रावक में बिना दिए हुए दूसरे के द्रव्य को लेने का भाव नहीं होता है। बहु मूल्य की वस्तु को अल्प मूल्य में लेने का भाव नहीं होता है। कपट से, लोभ से, मान से और क्रोध से पर द्रव्य को लेने की कामना नहीं होती है। ऐसा जीव अचौर्याणु व्रत का धारक है।

शंका—ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं ?

समाधान—अपनी विवाहिता स्त्री या विवाहित पति के सिवाय सब स्त्रियों या पुरुषों को विकार भाव से नहीं देखता है। पर स्त्री को माता-बहन तथा पुत्री तुल्य मन वचनकाय से जानता है। उदासीन श्रावक स्त्री के देह को अशुचिमय जान उसके रूपलावन्य में मोहित नहीं होता है। उदासीन श्रावक स्वस्त्री में ही संतोष करता है उसके साथ तीव्र कामवश विनोद तथा क्रीड़ारूप प्रवृत्ति नहीं करता है परन्तु औषधि के समान स्त्री का सेवन करता है। सेवन करते समय भी यह पापभाव कब मिट जाय ऐसी भावना वाले श्रावक का नाम ब्रह्मचर्याणु व्रती श्रावक कहा जाता है।

शंका—पांचवे परिग्रह परिमाण व्रत में क्या भाव होते हैं ?

समाधान----उदासीन श्रावक आवश्यकता को कम करते हुए जीवन भर के लिए आवश्यकतानुसार दश प्रकार के बाह्य परिग्रह का परिमाण करले उसे परिग्रह परिमाणव्रत कहते हैं। दश प्रकार के परिग्रह के नाम ये हैं—१ खेत की जमीन की मर्यादा, २ रहने के मकान की मर्यादा, ३ सोने की मर्यादा, ४ चांदी, जवाहरात की मर्यादा, ५ नगद रुपया, ६ गाय भैंस घोड़ा इत्यादि ७ अनाज का परिमाण, ८ दास-दासी, ९ पीतलादिक सब बर्तन, फर्नीचर आदि, १० कपड़े बिछानादि।

पांच अणुव्रतों की रक्षा के लिए तीन गुणव्रत होते हैं। १ दिग्व्रत गुणव्रत २ अनर्थदन्ड विरत गुणव्रत, ३ भोगोपभोग परिमाणगुणव्रत।

१ दिग्व्रत गुणव्रत—जीवन भर के लिए पाप प्रवृत्ति छोड़ने के उद्देश्य से पूर्वादि दिशाओं की मर्यादा का पालन करे अर्थात् उन दिशाओं के बाहर विशेष रूप से धर्म का कारण हो तब तो जा सकता है परन्तु व्यापार हिंसादिक पाप कार्यों के लिए, की हुई मर्यादा के बाहर नहीं जा सकता। जो मर्यादा की है उस मर्यादा में कमी तो कर सकता है पर क्षेत्र बढ़ाने का भाव धर्मात्मा में कभी नहीं होता।

२ अनर्थदण्डविरति गुणव्रत—प्रयोजन के बिना

निरर्थक पाप विकल्पों का नाम अनर्थदण्ड कहा जाता है, ऐसे विकल्पों का त्याग कर देना ही अनर्थदण्डविरति गुणव्रत है। अनर्थदण्ड में प्रधानतया पांच प्रकार के विकल्प होते हैं। १ अपध्यान, २ पापोपदेश, ३ प्रमाद चर्या, ४ हिंसादान, ५ दुःश्रुति श्रवण।

१ अपध्यान—दूसरों के दोषों को ग्रहण करने का भाव, दूसरे के धन की वांछा करना, पर स्त्रियों को विकार भाव से देखना, दूसरे का झगड़ा देखने में आनंद मानना, साधर्मी धनी बन जावे तो उसका दिवाला कब निकल जावे ऐसा भाव करना, परके घर पुत्र जन्म होवे तो सुनकर दुःखी होना, यह अपध्यान है।

२ पापोपदेश—खेती के कामों में सलाह देना कि ट्रेक्टर चलाइए तो बहुत फसल होगी, पशु के व्यापार में सलाह देना कि बड़े शहर में ले जाकर बेचने से बहुत दाम आयगा, व्यापार में रास्ता दिखाना, सट्टे का रास्ता दिखाना, जुए का रास्ता दिखाना, इन्कमटैक्स से बचने का रास्ता बतलाना, चुंगी से बचने का रास्ता बतलाना, बाजार में साग बहुत है आप मोल लीजिए, कहना ये सब पापोपदेश नाम का अनर्थदण्ड है

३ प्रमादचर्या---निष्प्रयोजन पृथ्वी खोदना, जल गिराना यानी स्नान में २-४ बाल्टी जल गिराना, नल के

नीचे स्नान खूब करते रहना, विना प्रयोजन अग्नि जलाते रहना, विना प्रयोजन इलेक्ट्रिक पंखा चलाते रहना, विना प्रयोजन बिजली जलाते रहना, विना प्रयोजन वनस्पति का छेदन-भेदन करना ये सब प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड है।

४ हिंसादान—कुल्हाड़ी आदि दूसरे के माँगने पर देना, खेती के काम के लिए दूसरे जीवों के लिए फावड़ा आदि देना, दूसरे जीवों को छुरी, कटार, तलवार, रिवाल्वर आदि हिंसा के उपकरण भेंट में देना, बिल्ली आदि हिंसक पशुओं का पालन करना, निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों को चटाई, चश्मा, घड़ी, फाउन्टेन पेन आदि देना, क्षुल्लकादि को टौर्च आदि देना, श्वेताम्बर साधु आदि को साबुन, नास आदि देना यह हिंसादान है।

५ दुःश्रुति—एकान्तवादियों के बनाये हुए कुशास्त्रों का तथा हास्यकुतूहलादि प्रधान उपन्यासों का तथा वशीकरण करने वाले मंत्र जंत्रादिक के शास्त्र का और स्त्रियों की कुचेष्टा दिखाने वाले कोकशास्त्र आदि का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना-सुनाना व ऐसे शास्त्र दूसरों को दान में देना, दुःश्रुति है। ये पाँच प्रकार के अनर्थदण्ड आत्मा को दुःख में डुबाने वाले हैं। ऐसे अनर्थदण्डरूप

भावों का जो श्रावक त्यागी है वह ही अनर्थदण्डव्रती गुण व्रत का धारी है।

३ भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत—उदासीन श्रावक अपनी शक्ति जान भोजन, ताम्बूल, वस्त्रादिक का प्रमाण करे। जो जीव प्राप्त वस्तु का त्याग करता है उसकी देवों का इन्द्र भी प्रशंसा करता है। परन्तु जो जीव अप्राप्त वस्तु का त्याग करता है वह इतनी प्रशसा को प्राप्त नहीं होता। भोजन, पानी, माला आदि भोग्य वस्तु हैं और बिछौना, चारपाई, वस्त्र, आभूषण, स्त्री आदि उपभोग्य हैं। इनकी निरन्तर आवश्यकताओं को कम करते हुए परिमाण करते रहना भोगोपभोग परिमाण नामका गुणव्रत है। आज मैं इतना रस छोड़कर आहार लूँगा, आज इतने प्रकार के अन्न पदार्थ खाऊँगा, आज इतनी बार जल पीऊँगा, आज इतने ही कपड़े,गहने पहनूँगा, आज स्त्री का भोग नहीं करूँगा, आज चारपाई पर नहीं सोऊँगा, ऐसे नियम उदासीन श्रावक करते हैं। चौके में अनेक सामग्री बनी हैं तो भी आज इतनी सामग्री खाऊँगा ऐसी भावना उदासीन श्रावक करते रहते हैं। नमक का त्याग करके मीठा बनाने का आदेश देना, मीठे का त्याग करके किसमिस, छुहारे आदि सामग्री बनाने का आदेश देना, घृत छोड़कर खोपरे के लड्डू बनाने का आदेश

देना, दूध छोड़कर मावेका आदेश देना यह सब सच्चा त्याग नहीं है। क्योंकि सरल मार्ग छोड़ कर विषम मार्ग ग्रहण करने का भाव तीव्र कषाय के बिना होता ही नहीं। परंतु धर्मात्मा में ऐसे छल का भाव नहीं होता है।

धर्म मार्ग में आगे बढ़ने के लिए उदासीन श्रावक शिक्षा व्रत का पालन करते हैं। वह शिक्षा व्रत चार प्रकार का है। (१) सामायिक शिक्षाव्रत (२) प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत (३) देशविरति शिक्षाव्रत (४) अतिथि संविभाग शिक्षाव्रत।

[१] सामायिक शिक्षा व्रत—उदासीन श्रावक पाप भाव से बचने के लिए पुण्य भाव रूप सामायिक करते हैं। यह व्यवहार सामायिक है। सामायिक करने में क्षेत्र, काल, आसन, मन, वचन, और काय की शुद्धता रखना, यह सामायिक की सामग्री है। इतनी सामग्री न होवे तो सामायिक में दोष लगना सम्भव है।

क्षेत्र—जहाँ धूमधाम न हो, जहाँ बहुत लोगों का आवागमन न हो, जहाँ डास, मच्छर, चींटी, भ्रमर आदि शरीर के बाधा कारक जीव न हो, ऐसी भूमि सामायिक करने योग्य है।

काल—मध्याह्न काल, प्रातःकाल तथा अप्राह्न काल, इन कालों में दो दो घड़ी सामायिक करने योग्य

हैं, ऐसा गणधर देव ने कहा है ।

आसन्न—पर्यंक आसन अथवा खड्ग आसन रख कर काल की मर्यादा कर पंच इन्द्रिक विषयों में मन को जाने न देना, परन्तु आत्मा के गुण पर्याय के चिन्तन में अथवा पंच परमेष्ठी के गुण का चिंतन करने में चित्त को लगाना, वह उत्तम सामायिक है । जो जीव इतना भी नहीं कर सकता है, वह मौन से मन में सामायिक पाठ करे, यह भी न जाने ऐसी जीव अरहंत के नाम की माला घुमावे, परंतु अपने मन को पाप भाव में जाने न देवे, उसी का नाम व्यवहार सामायिक है । उदासीन श्रावक को जिसे अनन्तानुबंधी कषाय तथा अप्रत्याख्यान कषाय नहीं है, उसीका नाम निश्चय सामायिक है । प्रधान रूप से दो प्रकार के आसन कहे गए हैं तो भी शक्ति होवे तो अनेक प्रकार के आसन कर अपने समय का उपयोग कर सकता है ।

सामायिक काल में हाथ, पैर आदि शरीर के अवयव को स्थिर न रख कर व्यर्थ ही चलाते रहना, नींद का झोंका लेना, कभी कमर को सीधी करना, कभी कमर को झुका देना, कभी आँख का खोलना, कभी आँख को बन्द करना, ये सब सामायिक के अतिचार रूप दोष हैं । ऐसे दोष को शास्त्रीयभाषा में काय दुस्प्र

निधान अतिचार कहा जाता है। इन अतिचारों को छोड़ने का भाव रखना चाहिए। परंतु अतिचार हैं, ऐसा मानकर अतिचार लगाते रहे तो आत्मा कल्याण के पथ पर नहीं आ सकता है। सामायिक के काल में मुख से जोर से पाठ करे, गुनगुनाने लगे, इन सबसे सामायिक में दोष लगता है। इस दोष को वचन दुस्प्रनिधान अतिचार कहते हैं। यह अतिचार छोड़ने का भाव रखना चाहिए परंतु अतिचार है ऐसा मानकर, अतिचार का सेवन करना आत्मा को गिराना है। सामायिक के काल में पाप के विकल्प का आ जाना, जैसे किसी का भला बुरा विचारने लगना, व्यापार का विचार आ जाना, पाँच इन्द्रियों के विषयों का विचार आ जाना, इससे सामायिक में दोप लगता है। इस दोप को मन दुस्प्रनिधान नाम का अतिचार कहते हैं। ऐसा अतिचार छोड़ने की भावना रखना वही उत्तम मार्ग है, परंतु अतिचार है ऐसा मान कर शिथिलाचार का सेवन करना, आत्मा को डुबाने का कारण है। सामायिक के काल में उत्साह का न होना, सामायिक का काल हो जाने पर भी योग काल में सामायिक में न बैठना, सामायिक में चित्त का न लगाना सामायिक का काल कब पूरा हो जाय, ऐसा बार बार विचार करना इससे सामायिक में दोप लगता है। इस

दोष का नाम अनादर नाम का अतिचार है। ऐसा अतिचार छोड़ने की भावना रखना यही उत्तम मार्ग है। परंतु अतिचार है ऐसा मानकर शिथिलाचार का सेवन करने से आत्मा अपने कल्याण के पथ से गिर जाती है। सामायिक के काल में, सामायिक में चित्त न लगने से पाठ बोलते बोलते भूल जाना, इधर का उधर बोल देना, इससे सामायिक में दोष लगता है। इस दोष का नाम समृत्यनुपस्थान के नाम का अतिचार है। ऐसे अतिचार छोड़ने की भावना रखना यही उत्तम मार्ग है। परन्तु जो जीव ऐसा विचार करे, क्योंकि अतिचार लग जाते हैं इससे तो सामायिक न करना उत्तम है। ऐसे विचार वाले जीव किसी भी काल में अपना कल्याण नहीं कर सकते हैं। परंतु जो सामायिक का प्रयोग रख कर दोप छोड़ने की भावना रखेगा, वह जीव अपना कल्याण कर सकता है।

प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत—उदासीन श्रावक पक्ष के अष्टमी चतुर्दशी दोनों ही पर्व के दिन स्नान, विलेपन आभूषण, स्त्री संसर्ग, सुगन्ध, धूप, दीप आदि भोगोपभोग की सामग्री के प्रत्ये का राग का त्याग कर वैराग्य भावना सहित पाप भाव से बचने के लिए उपवास करते हैं। अर्थात चारों प्रकार का आहार खाने के भाव का त्याग करते हैं अथवा एक भुक्ति वा नीरस आहार लेकर चैत्यालय

साधु निवास, उपवास गृह आदि एकांत स्थान में जाकर पूजा, भक्ति, स्वाध्याय आदि में अपना समय लगा कर काल को व्यतीत करते हैं उसीका नाम प्रोषधोपवास शिक्षा व्रत है।

देशविरति शिक्षा व्रत—उदासीन श्रावक ने दिग विरति गुण व्रत में जो दशों दिशाओं की जीवन भर के पाप कार्य से बचने के लिए क्षेत्र की मर्यादा की थी, उस मर्यादा में से पाप की निवृति के लक्ष्य से नियमपूर्वक अमुक दिन मास आदि का त्याग करना उसीका नाम देश विरति शिक्षा व्रत है। देश विरति शिक्षा व्रत में दिशा की मर्यादा कम हो सकती है। परन्तु दिशा की मर्यादा बढ़ नहीं सकती है।

अतिथि संविभाग शिक्षा व्रत—उदासीन श्रावक जब अपने आहर लेने की इच्छा प्रगट करते हुए उसके पहले पात्र जीवों को आहार दान दिए बाद आहार लूँ ऐसी भावना से अपने गृह के फाटक में पात्र जीव की राह देखना उसी का नाम अतिथि संविभाग शिक्षा व्रत है। पात्र जीव तीन प्रकार के हैं:—(१) नग्न दिगम्बर मुनि जो आगमअनुकुल२८ मूल गुण का पालन करते हैं २२परि-षह को जीतते हैं,और मनुष्य,देव,तिर्यंच द्वारा आए उपसर्ग को साम्य भाव से जीतते हैं। उसे उत्तम पात्र कहते हैं।

(२) पंचम गुणस्थान वाले अर्जिका ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि मध्यम पात्र हैं। (३) चतुर्थ गुणस्थान वाले अव्रति सम्यक्दृष्टि जघन्य पात्र हैं। उत्तम पात्र को ही नवधा भक्ति से आहार दान दिया जाता है। भक्ति के नामः—
(१) पड़गाहना (२) उच्च आसन देना (३) पादप्रक्षालन (४) पूजन (५) प्रणाम (६) मनःशुद्धि (७) वचन शुद्धि (८) काय शुद्धि (९) आहार पान शुद्धि।

शंका—मनशुद्धि किसे कहते है ?

समाधान—श्रावक (दातार) मुनि महाराज को (पात्र) कहते हैं कि हे भगवन्त! यह चौका मेरे निज के लिये लगाया है। यह चौका लगाने में मैंने मन से भी ऐसा विकल्प नहीं किया है कि यह मुनि के लिए चौका लगाया है, इससे मेरा आहार जल शुद्ध है।

शंका—वचन शुद्धि किसे कहते है ?

समाधान-- -हे भगवन्त! मैंने वचन से भी ऐसा विकल्प नहीं किया है कि यह चौका मुनि के लिये लगा रहा हूँ। परन्तु यह चौका मेरे खुद के लिये लगाया गया है। जिससे मेरा आहार जल शुद्ध है।

शंका----काय शुद्धि किसे कहते हैं ?

समाधान----हे भगवन्त! काय से भी मैने ऐसी क्रिया नहीं की है कि यह चौका मुनि के लिये लगा

रहा हूँ। परन्तु मेरे खुद के लिए यह लगाया गया है। जिस कारण से आहार जल शुद्ध है।

पंचम गुणस्थान वाले अर्जिका, ऐलक, क्षुल्लक आदि उद्दीष्ट आहार के त्यागी की नवधा भक्ति में से पूजा छोड़ कर अन्य आठ भक्ति करनी चाहिएँ।

शंका----अर्जिका आदि की पूजा क्यों नहीं करनी चाहिये?

समाधान----पूजा मात्र छठवें गुणस्थान वाले जीवों की होती है। अर्थात् जो जीव पाँच इन्द्रियाँ तथा इसके विषयों को जीत लेते हैं, ऐसे जितेन्द्रिय जिन की पूजा होती है। परन्तु जो जीव इन्द्रियों के आधीन है उनकी पूजा कैसे हो सकती है। पंचम तथा छठे गुणस्थान में यही अन्तर है। पंचम गुणस्थान वाले पहली प्रतिमाधारी श्रावक को जितना संवर होता है उतना ही संवर अर्जिका आदि को होता है, तब हम उनकी पूजा कैसे कर सकते है? अर्जिका, ऐलक आदि हमारे सहधर्मी भाई हैं, इसी कारण से भगवान के समवशरण में ऐलक के साथ में ही अव्रति श्रावक बैठते हैं और अर्जिका के साथ में अव्रति श्राविका बैठती हैं दोनों की श्रावक संज्ञा है। इसी कारण से हम अर्जिका आदि को इच्छाकार कहते है। जिससे भला नमोस्तु कहने का अधिकार नहीं है उसकी हम

पूजा कैसे कर सकते हैं ?

शंका----अर्जिका की पूजा न करने से यदि वह आहार न लेवे तब हम क्या करे ?

समाधान---अर्जिका धर्मात्मा जीव है। उससे शान्ति से पूछना चाहिए कि आप का गुणस्थान कौन सा है। और कितनी प्रकृति का आप को बन्ध नहीं पड़ता है। तब वह समझ जायगी कि मेरा पद पूजा कराने का नहीं है, तो भी वह हठ से पूजा करने की मॉग करे तब आप को समझना चाहिये कि वह धर्मात्मा जीव नहीं है, मानकषाय ग्रस्त जीव है। धर्मात्मा जीव को ही भक्ति से आहार दान दिया जाता है।

शंका---पंचम गुणस्थान वाले ब्रह्मचारी आदि की नवधा भक्ति में से कितनो भक्ति करनी चाहिये ?

समाधान---जो जीव निमन्त्रण से भोजन करने जाते हैं उनकी नवधा भक्ति में से चार भक्ति छोड़ कर अर्थात् एक पूजा (२) मन शुद्धि (३) वचन शुद्धि (४) काय शुद्धि छोड़ कर पांच भक्ति होती हैं। क्योंकि उस जीव ने निमन्त्रण माना है। इस कारण से उसके लक्ष्य से ही आहार बनाया जाता है। जो आहार बनाने में हिंसा होती है उसमें उसकी अनुमोदना है। इस कारण से ऐसे जीवों से मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि,नहीं कही जाती।

चार प्रकार का दान कहा गया है, (१) आहार दान (२) औषध दान (३) अभयदान (४) ज्ञानदान ।

शंका----इन चार दानों में से उत्तम दान कौन-सा है ?

समाधान---दान तो सब उत्तम ही हैं, तो भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने से मालूम होता है कि आहारदान देने से पात्र जीव एक दिन के क्षुधा नाम के रोग से मुक्त हो सकता है । बाद में वही क्षुधा संताप करती है । औषधदान देने से पात्र जीव पक्ष, मास या वर्ष के रोग से मुक्त हो सकता है । बाद में रोग हो जाना सम्भव है । अभय दान देने से वर्तमान आयु की रक्षा हो सकती हैं । तो भी अनन्त जन्म-मरण से मुक्त नहीं हो सकता । ज्ञान दान देने से अनन्त भव का जन्म-मरण काट कर जीव मोक्ष पर्याय प्रकट कर सकता है ।

शंका—क्या आपने अपने जीवन में कभी ज्ञान-दान दिया है ?

समाधान—हमने कभी ज्ञान-दान दिया नहीं है । ज्ञान-दान की महिमा हमारे भीतर कभी न आई । क्योंकि वर्तमान में किसी भी त्यागी ने ज्ञान दान की महिमा दिखलाई नहीं जिससे वह भावना आई नहीं है ।

जिस जीव में ज्ञान नहीं है । वह जीव ज्ञान की

महिमा कैसे जान सकता है ? ज्ञान की महिमा ज्ञानी ही जान सकता है। अज्ञानी ने क्रिया काण्ड में ही धर्म माना है। जिससे वह जीव क्रिया काण्ड का ही उपदेश देगा कि शूद्र जल का त्याग करो, यज्ञोपवीत पहनो इत्यादि।

शंका—पात्र जीवों को दान देने का अधिकार किसको है ?

समाधान---जो जीव पात्र है, वही जीव पात्र जीवोंको दान दे सकता है। जाति के आधार पर पात्रता एवं दान देने का अधिकार नहीं है। जाति का क्षत्रिय है और दान की विधि नहीं जानता है उसके हाथ से दान, पात्र जीव कैसे ले सकता है। पात्र जीव कुपात्र के हाथ से एवं अपात्र के हाथ से दान नहीं लेते। क्योंकि कुपात्र एवं अपात्र दान की विधि जानते ही नहीं हैं।

शका—पात्र कुपात्र का क्या लक्षण है ?

समाधान—जिस जीव को देव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान है। गुरू के स्वरुप का यर्थाथ ज्ञान है और व्यवहार धर्म की श्रद्धा है। ऐसे जीव को पात्र कहा जाता है। अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग १८ दोष रहित को देव मानते हैं। नग्न दिगम्बर मुनि जो आगम अनुकूल २८ मूलगुण का पालन करते हैं, २२ परिषह को जीतते हैं और मनुष्य देव, तिर्यंच द्वारा आये उपसर्ग को जीतते हैं उनको

गुरू मानते हैं। और दयामयी धर्म को मानते हैं।
अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह भाव
के त्याग को व्यवहार धर्म मानता है। ऐसे जीव का नाम
पात्र जीव है। ऐसे पात्र जीव पात्र के हाथ से ही दान
लेते हैं। परन्तु कुपात्र अपात्र के हाथ से दान नहीं लेता
चारों जाति वाले जीव पात्र बन सकते हैं।

अनगार धर्मामृत में चतुर्थ अध्याय श्लोक नं०
१६७ में लिखा है कि--"अन्यै ब्रह्मिण क्षत्रिय वैश्य
सच्छूद: स्वदात् गृहात" अर्थ--मुनियों को दान ब्राह्मण
क्षत्रिय, वैश्य तथा "सत्" शूद्र अपने घर से दे सकते हैं।
जब ये चार वर्ण के जीव मुनि बन सकते हैं तो दान कैसे
नहीं दे सकते हैं? आचार्य सोमसेन धर्मरसिक में लिखते हैं कि
"विप्र-क्षत्रिय-विट्-शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः। जैनधर्मे
पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः॥" अर्थ--ब्राह्मण, क्षत्रिय
वैश्य, शूद्र सब ही भ्रातृसम जैन धर्म में दीक्षित होने
योग्य हैं। एवं आचार्य सोमदेव यश स्तिलक में लिखते हैं
कि "दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाश्चतुर्थश्च विधोचितः।
मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः॥' अर्थ ब्राह्मण-
क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण मुनि दीक्षा के योग्य हैं और
चौथा शूद्र वर्ण विधि के द्वारा दीक्षा के योग्य हैं। मन
वचन तथा काय से किये जाने वाले धर्म का अनुष्ठान

करने के लिये सभी जीव अधिकारी हैं। प्रवचनसार ग्रन्थ के चारित्राधिकार की गाथा ३९ की टीका करते हुए आचार्य जयशेन लिखते है "कि यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि" "मुनि बन सकते हैं"। इससे सिद्ध होता है कि सत् शूद्र भी मुनि बन सकते हैं। और मुनि को आहार दान भी दे सकते हैं।

कुपात्र---जिस जीव की देव के स्वरूप में विपरीतता है। वीतराग सर्वज्ञ को जो देव मानते हैं। परन्तु वह १८ दोष सहित है अर्थात् देव को क्षुधा लगती है। रोग आने से औषधि लेते हैं। ऐसी मान्यता वाले जीव को देव के स्वरूप में विपरीतता है। निर्ग्रन्थ गुरू को तो गुरू मानते हैं। परन्तु गुरू वस्त्र रखते हैं। पात्र रखते हैं। यह गुरू के स्वरूप में विपरीतता है। पंच पाप के त्याग को व्यवहार धर्म मानते हैं। ऐसी मान्याता वाले जीव का नाम कुपात्र है।

अपात्र---जिसकी देव के स्वरूप में विपरीतता है, गुरू के स्वरूप में विपरीतता है और व्यवहार धर्म के स्वरूप में विपरीतता है, ऐसी मान्यता वाले जीव का नाम अपात्र है। जैसे देव आयुध रखते हैं, स्त्री रखते हैं। ऐसी मान्यता देव के स्वरूप की विपरीतता है। गुरू स्त्री का भोग करते हैं। मृगछाला रखते हैं। पंच धुनी

तपते हैं। यह सब गुरू के स्वरूप में विपरीतता है। देव के नाम पर बलिदान देने से धर्म होता है। गंगा स्नान करने से धर्म होता है, पति के मरण पर सती होने से धर्म होता है। पहाड़ से गिर कर मरने में धर्म होता है। यह सब मान्यताएँ, धर्म में विपरीतता हैं।

सल्लेखना मरण---उदासीन श्रावक समाधि पूर्वक देह छोड़ना चाहता है। जब शरीर छूटना मालूम पड़ जाता है तथा धर्म मार्ग में शरीर कार्य नहीं करता है, तब धर्मात्मा जीव सल्लेखना-मरण करना चाहता है। अपनी शक्ति देख कर प्रथम चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दूध लेने की इच्छा रखता है। शरीर की अवस्था विशेष जीर्ण देख कर तथा अपना परिणाम सोच कर दूध छोड़, छाछ लेने का भाव करता है। बाद में छाछ छोड़ कर मात्र जल लेने का भाव करता है। अन्त में जल छोड़ कर शरीर का त्याग न होवे तब तक उपवास करता है। उसी का नाम सल्लेखना मरण है। सल्लेखना मरण में प्रधानरूप से कषाय छोड़ने का लक्ष्य है। और कषाय छूटने से पर पदार्थ का त्याग स्वयं हो जाता है।

तीसरी सामायिक प्रतिमा—उदासीन श्रावक दिन में तीन बार नियम पूर्वक सामायिक करे। उसमें प्रमाद न आने दे। सामायिक में १२ आवर्त सहित चार

प्रणाम सहित, पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करें, प्रसन्न आत्मा सहित ऐसा वीर धीर श्रावक दृढ़ चित होकर एक स्थान पर बैठ कर कायोत्सर्ग कर अपने द्रव्य गुण पर्याय का चिन्तन करे तथा देव के स्वरूप का चिन्तन, गुरू के स्वरूप का चिन्तन करे। कभी-कभी मन में शान्त चित्त से सामायिक आदि का पाठ करे तथा पंच परमेष्ठी का जाप करे। यह सब व्यवहार सामायिक है। अर्थात् सावध्य मार्ग से चित्त को हटा कर प्रशस्त राग में चित्त को लगाना वह व्यवहार सामायिक है। अनन्तानुबन्धी कषाय तथा अप्रत्याख्यान कषाय का अभाव ही निश्चय सामायिक है। व्यवहार सामायिक में भी अनेक प्रकार का अतिचार लग जाता है। तो भी धर्मात्मा जीव अपनी शक्ति अनुकूल उस अतिचार से बचने का प्रयास करता है। परन्तु सामायिक के भाव के प्रति अनादर भाव नहीं रखता है। सामायिक शिक्षा व्रत में सामायिक प्रयोग रूप में अनियमित रूप से हो जाती थी परन्तु सामायिक प्रतिमा में नियमित रूप से होती है। इतना ही इसमें भेद है।

प्रोषध प्रतिमा का स्वरूपः—उदासीन श्रावक शक्ति होवे तो जीवन भर एक बार आहार तथा जल लेने की प्रतिज्ञा करे। यह उत्तम मार्ग है। परन्तु यह न बन सके तब पक्ष में दो बार अर्थात् अष्टमी और चतुर्दशी

का उपवास करने की जीवन पर्यन्त तक की प्रतिज्ञा करे। सप्तमी और त्रियोदशी के दिन में दोपहर के बाद जिन मन्दिर या चैत्यालय में जा कर शास्त्र स्वाध्याय में दिन व्यतीत करे। संध्या के समय सामायिक आदि क्रिया कर्म कर चार प्रकार के आहार का त्याग कर उपवास ग्रहण करे। ग्रहस्थ का सर्व प्रकार का सावध्य योग का त्याग कर व्यवहार धर्मध्यान पूर्वक सप्तमी तथा त्रियोदशी की रात्रि व्यतीत करे। और अष्टमी चतुर्दशी के प्रातः समय सामायिक आदि नित्य क्रिया कर्म से निवृत हो कर सम्पूर्ण दिन शास्त्र स्वाध्याय, प्रश्नोत्तर, अर्हंत भक्ति आदि व्यवहार धर्म ध्यान में व्यतीत करे। संध्या समय सामायिक आदि नित्य नियम से निवृति होकर अल्प निन्द्रा लेकर आत्म चिन्तन में रात्रि व्यतीत करे। नवमी व पूर्णिमा के दिन प्रातः समय में सामायिक आदि क्रिया से निवृत होकर जिन पूजन और शास्त्र श्रवण करे। भोजन के समय घर पर जाकर पात्र जीवों को आहार दान देने के पश्चात् स्वयं आहार ग्रहण करे। इसी प्रकार के जीवों के भाव और बाह्य क्रिया का नाम प्रोषध प्रतिमा है। उदासीन श्रावक आरम्भ का त्याग कर, उपवास करता है। वह जीव उपवास रूप पुण्य भाव से अनेक भव में बाँधे हुए पाप

कर्मों का नाश करता है। उपवास में व्यापार आदि के कार्य करने का निषेध ही है। उपवास में कषाय का त्याग किया जाता है और कषाय छूटने से खाद्य पदार्थ का स्वयं त्याग हो जाता है। परन्तु जो जीव खाद्य पदार्थ का त्याग करता है, परन्तु अपनी कषाय छोड़ता नहीं है, ऐसे जीवों को उपवास न कह कर मात्र लंघन करने वाला कहा गया है। ऐसे लंघन रूप उपवास से पाप कर्मों को निर्जरा नहीं होती है। उपवास पुण्य भाव है। पुण्य भाव से भाव निर्जरा नहीं होती है परन्तु पाप रूपी द्रव्य कर्म की निर्जरा होती है। और पुण्य कर्म का बन्ध पड़ता है जो मोक्ष मार्ग में सहायक नही है। बंध भाव का अभाव मोक्ष मार्ग में सहायक है यही लक्ष्य रहना चाहिये।

सचित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूपः—सचित्त त्याग प्रतिमाधारी उदासीन श्रावक का सचित्त वनस्पति खाने का भाव नहीं होतो परन्तु उस वनस्पति को प्रासुक बनाये जाने के बाद खाने का भाव करता है। इतना उसमें राग भाव का अभाव होता है। यद्यपि वह श्रावक अपने हाथ से ही सचित्त वनस्पति प्रासुक बनाता हैं। तथापि वनस्पति को प्रासुक बनाने के राग का त्याग नहीं हुआ है। परन्तु सचित्त खाने के राग का त्याग अवश्य हुआ है।

शंका—क्या उदासीन श्रावक वनस्पति के जीवों को मार कर खावेगा ?

समाधानः—यह आपकी भाषा कठोर हिंसा युक्त है जैसे माता को माता न कह कर पिता की जोरू या पत्नी कहना विवेक शून्य है, ऐसी आपकी भाषा है। वनस्पति के जीवों को मार कर खाने का भाव नहीं है। परन्तु तीव्र राग को दूर किया जाता है। जिसको विवेक वाली भाषा में प्रासुक आहार खाने वाला कहा जाता है। जैसे एक व्रती श्रावक तथा दूसरा अव्रती श्रावक बाहर गाँव जा रहे हैं। दोनों को वहुत ही क्षुधा एवं प्यास लगी है। संध्या समय दूसरे गाँव में पहुँचते हैं। वहाँ खाने का पदार्थ खोजते हुए बाजार में पहुँचे। वहाँ मात्र ककड़ी मिली। उन्होंने ककड़ी खरीद करली। जिस जीव को सचित्त का त्याग नहीं है, वह तो ककड़ी तुरन्त खाने लगा और कुवा में से जल निकाल कर कच्चा जल पीने लगा परन्तु जिस व्रती को सचित्त का त्याग है। वह ककड़ी प्रासुक न होवे और जल को प्रासुक न किया जाय तब तक अपने खाने के राग को रोकता है। यही दोनों जीवों के भावों का अन्तर है। भाव का अन्तर आपके ज्ञान में नहीं आता है। अतः जीवों को मार कर खाता है, यह कहना विवेक शून्य और अज्ञानता है।

शंकाः—जिस जीव ने कच्चे आलू का त्याग किया है क्या वह जीव आलू को सुखा कर खा सकता है ?

समाधानः—और वनस्पति को प्रासुक (सुखा) कर न खाना और मात्र आलू को सुखा कर खाना तीव्र राग है। तीव्र राग पाप का ही कारण है। इसी कारण धर्मात्मा जीव ऐसे तीव्र राग का त्याग करता है। सूखा आलू वह कभी खाते नहीं है।

शंका—अदरक एवं आलू दोनों ही अनन्त काय है। अर्थात् दोनों में अनन्त जीवों की हिंसा होती है। ऐसे एक ही जाति के होते हुये सोंठ, (अदरक) तो खाते है उसी प्रकार सूखा आलू खाने में क्या दोष है ?

समाधान—सोंठ खाने के राग में और सूखा आलू खाने के राग में महान् अन्तर है। सोंठ औषधि की तौर से खाई जाती है जब कि आलू आहार के तौर पर खायो जाता है। दोनों के राग में महान् अन्तर है। औपधि खाते समय औषधि खाना कब छूट जाय ऐसी भावना रहती है। जब आहार खाते समय ऐसा आहार रोज मिले ऐसी भावना रहती है। इससे मालुम होता है कि आलू खाने का राग तीव्र पाप का कारण है। इसलिए ऐसा भाव धर्मात्मा जीव कभी नहीं करता।

छटवी रात्रि भुक्ति अनुमति--दिवा मैथुन त्याग

प्रतिमाः—यह प्रतिमा पुरुष के लिए रात्रि भुक्ति अनुमति त्याग रूप है और स्त्री के लिए दिवस मैथुन सेवन करने का त्याग रूप है। उदासीन श्रावक श्राविका का अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने का भाव अभी हुआ नहीं है, जिससे वे दोनों अभी अब्रह्मचर्य का सेवन करते हैं, जो सन्तति उत्पत्ति का कारण है। बालक की उत्पत्ति होने से उसकी माता रात्रि में उस बालक को दूध जल आदि पिलाती है। इस कारण से वह श्राविका रात्रि में खिलाने की अनुमोदना का त्याग नहीं कर सकती। अपने रात्रि में खाने का राग प्रथम प्रतिमा में ही छूट गया है। वह श्राविका इतनी उदासीन है कि दिवस में मैथुन करने का राग उसको होता ही नहीं है। पुरुष को रात्रि में चार प्रकार के आहार खाने का त्याग पहली प्रतिमा में हो चुका है। परन्तु निकट के स्नेही आने से उसको रात्रि में जलपान कराने का राग छूटा नहीं था। परन्तु इस प्रतिमा में वह इतना उदासीन हो जाता है कि निकट का स्नेही आने से भी उसको रात्रि में जल दूध पिलाने की अनुमोदना भी नहीं करता है। उसी प्रकार का उदासीनभाव का नाम छटी प्रतिमा है।

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमाः—उदासीन श्रावक श्राविका से अभी तक अब्रह्मचर्य का सेवन हो जाता था। परन्तु अब

ऐसा निर्मल भाव हुआ कि वह अपनी पत्नि माता बहिन की तरह देखकर अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता है। अब्रह्मचर्य सेवन करने के भाव का नाश हुआ। वह भाव निर्जरा तत्व का है।। परन्तु मेरे ब्रह्मचर्य में किसी प्रकार का दोष न लगे ऐसी सावधानी का भाव पुण्य तत्ः का भाव है।

सातवीं प्रतिमा तक उदासीन श्रावक को आरम्भ तथा व्यापार करने का भाव रहता है। तो भी इसमें थोड़ी हिंसा हो एवं न्याय पूर्वक व्यवसाय करता है। परन्तु श्रावक के पास से माँग कर खाने का भाव होता ही नहीं है। माँगना महान् पाप है। इतना नहीं परन्तु इससे अपनी आत्मा का पतन होता है।

आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमाः—इस प्रतिमा में उदासीन श्रावक सर्व प्रकार के आरम्भ का त्याग कर देता है। जैसे कुऐ में से जल भरने का, चूल्हा जलाना, चक्की पीसना, पंखा से हवा खाना, जमीन आदि खोदना तथा हरित काय को काटने का भाव। ऐसे उदासीन श्रावक को अपने सहधर्मी भाई भोजन का निमन्त्रण दे जाते हैं। उनके घर चौके में वह आहार कर आता है। वह श्रावक इतना उदासीन है कि अब किसी भी प्रकार की सवारी में बैठने का राग उसे नहीं होता है। अर्थात्

रेल में बैठने का राग छूट जाता है। मोटर में बैठने का राग छूट जाता है हवाई जहाज में बैठने का राग छूट जाता है तथा बैलगाड़ी, घोड़े की गाड़ी एवं किसी भी प्रकार के जानवर पर बैठने का भाव उसे होता ही नहीं है। ऐसा उदासीन श्रावक नियम से पैदल ही विहार करता है। वह भी यत्नाचार पूर्वक ही करता है।

शंका—शास्त्र में क्षुल्लक पद के धारी जीवों ने विमान में विहार किया है ऐसा उल्लेख देखने में आता है तब आप इधर मना कैसे करते हैं?

समाधान—शास्त्र में विमान का जो उल्लेख है वह विमान मंत्र से चलते हैं। इस कारण से जीवों की विराधना नहीं होती है। परन्तु हवाई जहाज, रेल, मोटर आदि मशीन से चलते हैं, जो हिंसा के ही उपकरण हैं। रेल से भैंसे जैसे जानवर कट जाते हैं। मोटर से अनेक पंचेन्द्रिय जीव का घात हो जाता है। यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं। तब ऐसे हिंसा कार्य के उपकरणों का धर्मात्मा जीव उपभोग कैसे कर सकते हैं। वर्तमान में इस पद के धारी या उससे ऊपर के प्रतिमा धारी श्रावक रेल आदि में बैठते हैं, वह यथार्थ में विचार किया जाय तो ये अपने पद से गिरे हुये जीव हैं। ऐसे जीवों की भक्ति करना वे विनय मिथ्यात्व है।

शंका—आरम्भ त्यागी श्रावक टोर्च लाइट, इलेक्ट्रिक एवं लालटेन जला सकता है या नहीं ?

समाधानः—अरे ! अरे ! यह तो प्रत्यक्ष हिंसा है और आरम्भ भी है। ऐसा भाव आरम्भ त्यागी को कभी नहीं होता। विशेष तो क्या जलती हुई लालटेन की बत्ती कम करने का भाव भी आरम्भ त्यागी को नहीं होता। आरम्भ त्यागी जीवों को टोर्च लाईट दान में देना, पाप बन्ध का ही कारण है।

आरम्भ त्यागी श्रावक अपने कपड़े अपने हाथ से नहीं धोते हैं। क्योंकि कपड़े की धुलाई करना आरम्भ है और आरम्भ त्यागी ने सर्व प्रकार की हिंसादिक का त्याग किया है इस कारण से उनको ऐसा भाव होता ही नहीं है।

शंकाः—यदि आरम्भ त्यागी अपने हाथ से अपने कपड़े की धुलाई न करे तो क्या वह मैला कपड़ा पहनेगा ? मैले कपड़े में तो त्रश जीवों की उत्पत्ति हो जाती है।

समाधानः—आरम्भ त्यागी श्रावक कपड़े की धुलाई स्वयं करते भी नहीं है एवं मलिन वस्त्र भी नहीं पहनता है। परन्तु गृहस्थ श्रावक ऐसे आरम्भ त्यागी श्रावक के वस्त्रों की प्रासुक जल से धुलाई कर यथायोग

समय पर दे जाते हैं। यह तो गृहस्थी का धर्म है। आरम्भ त्यागी श्रावक ने आरम्भ का त्याग किया है। तो भी वह अपने पास में धन का परिग्रह रखते हैं। धन के परिग्रह का राग अभी छूटा नहीं है। वह धन अपने भोग उपभोग में तथा धर्म कार्य में लगाता है। परन्तु उस धन का व्याज खाने का भाव उसको होता नहीं है। उस प्रकार के व्यवहार का लोभ उसका छूट गया है।

नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमाः—आरम्भ त्याग प्रतिमा धारी के पास जो धन का परिग्रह था उस पर से इस प्रतिमा में उसका राग छूट जाता है। अर्थात् धन का परिग्रह भी रखता नहीं है। अमुक वस्त्र, चटाई आदि का परिग्रह मात्र है। परिग्रह त्यागी श्रावक अभी तक निमन्त्रण से श्रावक के घर से आहार कर आता है। परंतु आहार में अनुमति का राग छूटा नहीं है। निमंत्रण स्वीकार करना यह अनुमति है। हमारे लिए उकाली बना लेना, यह कहना भी अनुमति है। उस प्रकार के व्यवहार का राग इस प्रतिमा में छूटते नहीं है। ऐसा राग छोड़ने की भावना इस प्रतिमा में उदासीन श्रावक रखते हैं।

दसवीं अनुमति त्याग प्रतिमाः—इस प्रतिमा में सर्व प्रकोर सावध्य त्याग की भावना हो जाती है।

अर्थात् अनुमति का राग छूट जाता है। इस प्रतिमा में श्रावक इतना उदासीन हो जाता है कि भोजन का निमंत्रण भी स्वीकार नहीं करता है। निमंत्रण स्वीकार करने में, चौका में जो हिंसा होती है उसमें त्यागी की अनुमोदना आ जाती है। उस प्रकार की हिंसा का राग भी इस प्रतिमा में छूट जाता है। इस प्रतिमा में मेरे लिए उकाली बना लेना ऐसा कहने का भी भाव नही होता है। भोजन के समय श्रावक स्वयं आकर उदासीन श्रावक को भक्ति पूर्वक प्रार्थना करेगा कि मेरे चौके में भोजन के लिए पधारिए। तब उदासीन श्रावक उस श्रावक के साथ में उसके चौके में जाकर भोजन कर आता है। श्रावक ने दसवीं प्रतिमा धारी श्रावक के लक्ष से ही आहार बनाया है। इस कारण वह बुलाने को जाता है। यदि उसके लक्ष से आहार न बनाता तो उसको बुलाने को क्यों जाता? इससे सिद्ध होता है कि दसवीं प्रतिमा धारी उदासीन श्रावक को उद्दिष्ट आहार का दोष लगता है। अतः उदासीन श्रावक को उद्दिष्ट आहार लेने में दोष लगता है। ऐसा वह जानता है। इस कारण से उद्दिष्ट आहार लेने का राग कब छूट जाय और भिक्षा चर्या से आहार कब लूँ, ऐसी भावना वह रखता है।

ग्याहरवीं उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमाः—अनुमति

त्यागी उदासीन श्रावक उद्दिष्ट आहार छोड़ने की भावना करता था वह भाव इस प्रतिमा में प्रगट होता है। अब वह गुरू के सन्मुख प्रतिज्ञा करता है कि हे भगवन्! मेरे लक्ष्य से बना हुआ आहार कभी नहीं लूँगा। यदि निर्दोष आहार नहीं मिलेगा तो उपवास करूंगा। ऐसी प्रतिज्ञा करने के बाद भिक्षा यत्न पूर्वक ही मन, वचन और काय से कृतिकारित अनुमोदना जन नौ प्रकार के दोष टाल कर आहार ग्रहण करते हैं। दुःख की बात है कि वर्तमान में ऐसी महान् प्रतिज्ञा करने वाला जीव उद्दिष्ट ही आहार लेता है। प्रतिज्ञा भंग करने का डर उस आत्मा में नहीं रहा है। वह अपना कल्याण भला क्या करता होगा? यह उसकी ही आत्मा जानती है। मुख से तो बोलते हैं कि ग्याहरवीं प्रतिमा का पालन आगम अनुकूल होता नहीं है। तो भी अपनी मान कषाय से पुजाने का भाव है। यह भाव उसको नरक निगोद का पात्र बना देता है।

ग्याहरवीं प्रतिमाधारी श्रावक निर्दोष आहार ग्रहण करता है। परन्तु सचित्त आदि दोषों सहित ग्रहण नहीं करता है। जो आहर ग्रहण करता है वह भी याचना रहित ग्रहण करता है। परन्तु याचना पूर्वक ग्रहण नहीं करता है। ऐसे उद्दिष्ट त्यागी श्रावक में और श्राविका में

वर्तमान में दो दो भेद हैं। एक ऐलक, दूसरा क्षुल्लक। स्त्री में एक आर्यिका, दूसरी क्षुल्लिका। इन दोनों में निम्न प्रकार का भेद है। क्षुल्लक अपने पास में लंगोटी तथा एक चादर का परिग्रह रखता है। वह कैंची आदि से लौंच कर सकता है। एवं अपने हाथ से भी केश लौंच कर सकता है। वह बैठ कर धातु के पात्र या करपात्र में भोजन करता है। उसी प्रकार क्षुल्लिका भी एक साड़ी तथा एक चादर का परिग्रह रखती है। बाकी की समस्त क्रिया क्षुल्लक की तरह करती है। ऐलक लंगोटी मात्र का परिग्रह रखता है क्योंकि उसने अभी तक स्पर्श इन्द्रिय को जीता नहीं है। ऐलक केश लौंच करता है और बैठ कर, करपात्र में ही भोजन करता है। ज्ञान पाहुड़ की २१ वीं गाथा में कहा है कि:—

दुईयं च उत्त लिंग उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेई पत्ते समिदी भासेण मोणेण॥

अर्थः—दूसरा लिंग उत्कृष्ट श्रावक कहा है, जो गृहस्थ नहीं है उसका है। उत्कृष्ट श्रावक ग्यारहवीं प्रतिमा का धारक है सो भ्रमण कर भिक्षा से भोजन करे और पात्र में भोजन करे तथा हाथ में करे और समिति रूप प्रवर्तताचर्या में भाषा समितिरूप बोले अथवा मौन करि प्रवर्ते।

अर्जिका के विषय में भी कहा है कि—

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजई पिंडं सुएयकालम्मि ।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भंजेई ॥

अर्थ—अर्जिका एक काल विषें एक दफा भोजन करे। वार २ भोजन न करे। एक वस्त्र रखे। भोजन करते वक्त भी वस्त्र सहित भोजन करे। परन्तु नग्न हो कर भोजन न करे।

शंका—जब आर्यिका साड़ी रखती है तब नग्न होकर भोजन न करे ऐसा कहने का कारण क्या है?

समाधान—श्वेताम्बर शास्त्र में लिखा है कि दिगम्बर आर्यिका नग्न होकर भोजन लेती है। उस बात के निषेध के लिए मनाई की गई है।

शंका—आर्यिका रजस्वला हो जावे तब एक साड़ी से कैसे काम चल सकता है?

समाधान—आर्यिका की साड़ी जब मलिन हो जावे तब गृहस्थ श्राविका स्वच्छ साड़ी देकर के मलिन साड़ी वापिस ले जाती है। जिस कारण से आर्यिका का एक साड़ी से काम चल सकता है।

शंका—ग्याहरवीं प्रतिमाधारी श्रावक या श्राविका अपना वस्त्र अपने हाथ से धोवे या नहीं!

समाधान—वे अपने हाथ से वस्त्र की धुलाई नहीं

करते हैं। वस्त्र की धुलाई करने का राग आरम्भ त्याग प्रतिमा में ही छूट जाता है। श्रावक का धर्म है कि ऐसे प्रतिमाधारियों के वस्त्र की धुलाई करके उन्हें यथा समय पहुँचा देवे।

शंका--यदि गृहस्थ उसके वस्त्र की धुलाई न करे ऐसी अवस्था में वह क्या करे ?

समाधानः---उक्त प्रतिमाधारी श्रावक द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव का विचार कर ही त्याग करता है। श्रावक की पूर्ण भक्ति देख कर त्याग किया गया है तो श्रावक वस्त्र की धुलाई न करे यह असम्भव है। जो जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार नहीं करता है, वह अपने पद से भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा भ्रष्ट श्रावक ही वस्त्र की अपने हाथ से धुलाई करेगा। वह नाम मात्र का त्यागी है।

शंकाः---ग्याहरवीं प्रतिमाधारी श्रावक श्राविका मोटर रेल आदि में बैठ कर विहार कर सकते हैं या नहीं ?

समाधानः---मोटर, रेल, हिंसा का ही उपकरण है। ऐसे उपकरण का भोग करने का भाव उत्तम श्रावक में होता ही नहीं है। आरम्भ त्याग प्रतिमा में मोटर आदि वाहन में बैठने का राग छूट जाता है। तब ग्याहरवीं प्रतिमा धारी उत्कृष्ट श्रावक में ऐसा भाव कैसे हो सकता

है ? यदि ग्याहरवीं प्रतिमा धारी नाम रख कर मोटर आदि में विहार करते हैं तब उसको उत्कृष्ट श्रावक मानना मिथ्या ज्ञान है। उत्कृष्ट श्रावक भी डूबा हुआ है और उसकी भक्ति करने वाला गृहस्थ भी डूबा हुआ ही है।

शंका---क्या ऐलक क्षुल्लक आदि श्रावक टौर्चलाइट का उपभोग कर सकता है ?

समाधान---टौर्चलाइट का उपभोग आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी नहीं करता है। तब ग्याहरवीं प्रतिमाधारी कैसे करेगा। ऐसे त्यागी को टौर्चलाइट की बैटरी देना पाप बन्ध का ही कारण है।

शंका---ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक कोई भी संस्था का सदस्य बन सकता है या यहीं ?

समाधान---जिस जीव ने अनुमति का त्याग किया है वह जीव किसी भी संस्था का सदस्य नहीं बन सकता है। ऐलक, क्षुल्लक कैसे बन सकता है। संस्था में आरम्भ आदि पाप कार्यों में उत्कृष्ट श्रावक अनुमोदना कैसे करे। जब अनुमोदना नहीं कर सकता है, तब सदस्य कैसे बना सकता है।

शंका---संज्ञी, सम्मूर्छन, तिर्यंच, संयमासंयम भाव को प्राप्त हो सकता है या नहीं ?

समाधान---जिस जीव के पास में मोहनीय कर्म की २८

प्रकृतियाँ सत्ता में है, ऐसा जीव समूर्च्छन तिर्यंच बन कर लघुकाल में पर्याप्ति प्राप्त कर बाद में सम्यक्त्व प्रकृति का उदय आने से क्षायोपशमिक सम्यक्-दृष्टि बन जाता है। बाद में संयमा संयम भाव को प्राप्त कर पूर्व कोटि काल तक पालन कर, मर कर, देवों में उत्पन्न हो सकता है। (ध०-४-३६६)

शंका----जिन जीवों ने पहले तिर्यञ्च आयु का बन्ध कर लिया है वे बाद में सम्यक्त्व को ग्रहण करके दर्शन मोहिनी का क्षय करके तिर्यंच गति में जाते हैं। ऐसा तिर्यंच क्षायक सम्यक्-दृष्टि जीव तिर्यंच में संयता सयंत भाव वाला हो सकता है ?

समाधान---नहीं होता है। क्योंकि जिन्होने पहले तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया है ऐसे तिर्यंचों में उत्पन्न हुये क्षायक सम्यक्-दृष्टियों के सयंतासयंत गुण स्थान नहीं पाया जाता है। क्योंकि भोग भूमि के बिना अन्यत्र उनकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। दर्शन मोहनीय कर्म की क्षयणा नियम से मनुष्य गति में ही होती है। ऐसा आगम वचन है। धवल (ग्रन्थ नं० ३-४७५)

शंका--पांचवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है ?

समाधान---चौथे गुणस्थान में जो ७७ प्रकृतियों का

बन्ध कहा है उनमें से व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानावर्ण-क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्य जाति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, मनुष्य आयु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग व्रज वृषभ नाराच संहनन इन दस प्रकृतियों के घटाने पर ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

शंका---पांचवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान---चौथे गुण स्थान में जो १०४ प्रकृतियों का उदय कहा है उनमें से अप्रत्याख्यानावरण-क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देव आयु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरक आयु, वैक्रियिक शरीर वैक्रियिक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुरभग अनादेय, अयशःकीर्ति मिल कर १७ प्रकृतियों के घटाने पर ८७ प्रकृति रहीं, उनका उदय रहता है।

शंका---पांचवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान--चौथे गुणस्थान में १४८ प्रकृतियों की सत्ता कही है। उनमें से व्युच्छित्त प्रकृति एक, नरक आयु बिना १४७ की सत्ता रहती है। परन्तु क्षायिक सम्यक्-दृष्टि की अपेक्षा से १४० प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका---पांचवें गुणस्थान में पाँच भावों में से कौन से भाव किस प्रकार से हैं ?

समाधान---पांचवें गुणस्थान में गति, लेश्या तथा असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अवगाहना गुण, अव्याबाध गुण, अगुरू लघु गुण, सूक्ष्मत्व गुण आदि औदयिक भाव से परिणमन करते हैं। अर्थात् ये गुण सम्पूर्ण रूप से विकारी परिणमन करते हैं। अनेक जीवों की अपेक्षा से श्रद्धा गुण. उपशमभाव रूप, क्षायिक भावरूप तथा क्षयोपशम, रूप परिणमन करता है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण, वीर्य गुण, और चारित्र गुण क्षयोपशम भाव से परिणमन करते हैं। जीवत्व तथा भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं। उसी प्रकार अलग २ गुण अलग २ भावों से परिणमन करता है। इति पंचम गुण स्थानक समाप्त।

छट्ठा व सातवाँ प्रमत्त तथा अप्रमत्त गुणस्थान

छठे गुण स्थान में अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यान, तथा प्रत्याख्यान कषाय का अभावरूप वीतराग भाव हैं। जिसको निश्चय सामायिक संयम कहा जाता है। जितने अंश में रागादिक परिणति है उसी का नाम सराग संयम है। करणानुयोग की अपेक्षा से आत्मा के परिणाम दो समय तक छटवाँ गुणस्थान रूप रहता है और एक

समय सातवां गुणस्थान रूप परिणमन रहता है। उसी प्रकार आत्मा का परिणाम असंख्यात वार छटवाँ और सातवाँ गुण स्थान में घूमता रहता है। इस कारण से कहा जाता है कि छटवें गुणस्थान में जितने जीव हैं उससे आधी संख्या सातवें गुण स्थान में है। ये भाव आत्मा के ज्ञान में आते नहीं हैं। परन्तु आगम प्रमाण है। आगम में लिखा है कि छटे गुणस्थान में और सातवें गुणस्थान में मुनि संख्या का अन्तर इस प्रकार है। उसमें भी दो प्रकार की वर्तमान में मान्यता है। कहा है कि:---

सत्तादी अट्ठंता घएणवमज्झा य संजदा सव्वे।
तिगभजिदा विगगुणिदा पमत्तरासी पमतादु ॥

अर्थः---जिस संख्या के आदि में ७ है अन्त में ८ है और मध्य में ६ वार ९ है। उसने अर्थात् आठ करोड़ ९९ लाख ९९ हजार नौ सौ सत्तावन सर्व संयत है। इनके तीनका भाग देने पर २९९९९९९९ अप्रमत्ति संयत है और अप्रमत्त संयत्त के प्रमाण को दो से गुणा करने पर ५९९९९९९८ प्रमत्त संयत होते हैं। यह दक्षिण मान्यता है।

छक्कादी छक्कतां छएणवमंएझा य संजदा सव्वे।
तिगभजिदा विगगुणिदा पमतरासी पमता दु ॥

अर्थः---जिस संख्या आदि में छः अन्त में छः और मध्य में ६ बार ९ है उतने अर्थात् ६९९,९९,९९६ जीव सम्पूर्ण संयत हैं। इसमें तीन का भाग देने पर लब्धि आवे उतने अर्थात् २३३३३३३२. जीव अप्रमत्त सँयत है और इसे दो से गुणा करने पर जितनी राशि उत्पन्न हो उतने अर्थात् ४६६६६६६४. जीव प्रमत्त संयत हैं। (धवल० ग्रन्थ० नं० ३. पृ १०२)

इससे सिद्ध होता है कि करणानुयोग की अपेक्षा से दो समय जीव छटवाँ गुणस्थान में और एक समय सातवाँ गुणस्थान में रहता है। परन्तु जब जीव सातवाँ गुणस्थान में स्थिर हो जाता है तब अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। चरणानुयोग की अपेक्षा से जीव छठ्टा गुणस्थान में ही रहता है। जैसे आहारक शरीर वाला जीवात्मा भगवान के समवशरण में जाता है तब उसका छठ्टा ही गुणस्थान रहता है। सातवें गुणस्थान में नहीं जाता है। बुद्धि पूर्वक शरीर तथा वचन की उदीरणा छट्ठे गुणस्थान तक ही होती है और यह उदीरणा भाव चरणानुयोग की अपेक्षा से ही माना जाता है। क्योंकि ज्ञान की उपयोग रूप अवस्था में ही उदीरणा भाव होता है। जब औदयिक आदि भाव ज्ञान की लब्धि रूप तथा उपयोग रूप अवस्था में होते हैं। जब मुनिराज अपने

स्वभाव में स्थिर नहीं होते हैं तब २८ मूल गुणों का पालन करने का विकल्प उठता है। उस विकल्प का नाम छेदोपस्थापना संयम है। वे २८ मूल गुण निम्न प्रकार हैं। पाँच महाव्रत ५ समिति ५ इन्द्रियों की विजय ६ आवश्यक क्रिया का पालन १ नग्नता १ भूमि शयन १ स्नान का अभाव १ दन्त धोवन का अभाव १ केश लोंच करना १ खड़े २ करपात्र में भोजन लेना १ एक बार भोजन लेना। इस प्रकार २८ मूल गुण हैं। जो मुनिराज मूल गुणों में दोष लगाता है वह मुनिराज जिन लिंग का विराधक है कहा भी है कि "मूल गुणं छित्तूण य बाहिर कम्मं करेइ जो साहू। सोणलहइ सिद्धि सुहं जिण लिंग विराहगो णियदं" अर्थ—जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर मूल गुण धारण करे है उनको छेदन कर बिगाड़ कर केवल बाह्य क्रिया कर्म करे है सो सिद्ध जो मोक्ष ताका सुखकु नांही पावे है जाते ऐसा मुनि जिन लिंग का विराधक है। मुनिराज २८ मूल गुणों का यथार्थ आगम अनुकूल पालन करते हैं। कैसा है वह मुनिराज? त्रस तथा स्थावर जीवों की मन, वचन, काय से हिंसा करता नहीं है। दूसरे जीवों से हिंसा कराता नहीं है तथा जो हिंसा करता है उसकी अनुमोदना करता नहीं है। ऐसे अहिंसा महाव्रत से युक्त है। वे मुनि राज हितमित

आगम अनुकूल वचन बोलते हैं। जिनकी वाणी में न कड़ता है न कठोरता है ऐसे सत्य महाव्रत युक्त है। उस मुनिराज में पराई वस्तु लेने का भाव नहीं होता है। बिना आज्ञा से घास का कण भी लेने की भावना नहीं रहती है। ऐसे अचौर्य महाव्रत युक्त है। वे मुनिराज संसार की सब स्त्रियों के प्रति माता, बहन, पुत्री जैसा व्यवहार करते हैं। और अपने अन्तरंग में सूक्ष्म भी काम वासना का भाव उत्पन्न नहीं होने देते हैं। उसी प्रकार वे ब्रह्मचर्य महाव्रत सहित हैं। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए अर्जिका से भी सात हाथ दूर बैठते हैं। एवं जिसके कन्या, विधवा, राजरानी आदि स्त्रियों से क्षण भर भी वार्तालाप करने का भाव नहीं होता है। कहा भी है कि—

कण्णं विधवं अंतेउरियं तह सइरिणी सलिंगं वा।
अचिरेणल्लियमाणो अववादं तत्थ पप्पोदि ॥१८२॥

अर्थः—कन्या, विधवा, रानी व विलासिनी स्वेच्छा चारिणी, दीक्षा धारण करने वाली। ऐसी स्त्रियों से क्षण मात्र भी वार्तालाप करते हुए मुनिराज लोक निन्दा को पाते हैं।

साधारण मुनि भी आर्यिका को उपदेश नही दे सकते हैं। क्योंकि उस व्यवहार का राग साधारण मुनि

महाराज में नहीं होता है। उपदेश देने का अधिकार मात्र आचार्य को ही है। कहा भी है किः—

गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पकोदुहल्लो य।
चिरपव्वई गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि ॥१८४॥

अर्थः—अगाध गुणशाली हो, परवादियों से दबने वाला न हो, थोड़ा बोलने वाला हो। अल्प विस्मय हो। बहुत काल का दीक्षित हो। और आचार प्रायश्चित आदि ग्रन्थों का जानने वाला हो। ऐसा आचार्य आर्यिकाओं को उपदेश दे सकता है। कैसी हो आर्यिका? जो शरीर का संस्कार करती नहीं है। परन्तु अपने ज्ञान ध्यान में रमण करती है। शरीर ढकने के लिए महीन मलमल आदि कपड़ा मिल जाये ऐसी विकल्प रहित होती है। कहा भी है कि"।

अविकार वत्थवेसा जल्लमलविलित्त चत देहाओ।
धम्मकुलकित्ति दिक्खा पडिरूपविशुद्ध चरियाओ ॥ १९० ॥

अर्थः—जिन के वस्त्र विकार रहित होते हैं, शरीर आकार भी विकार रहित होता है। शरीर पसेव व मल से लिप्त है तथा संस्कार (सजावट) रहित है। क्षमा आदि धर्म, गुरु आदि की संतान रूप कुल, यश, व्रत इनके समान जिनका शुद्ध आचरण है। ऐसी आर्यिकायें होती हैं।

जहाँ अर्जिका की भी संगति करने की मनाई है वहाँ गृहस्थ स्त्रियों के साथ में वार्तालाप करने की मनाई सहज हो जाती है। इतना नहीं परन्तु उस व्यवहार का भाव मुनि पर्याय में होता ही नहीं है। इस कारण अखण्ड ब्रह्मचर्य महाव्रत सहित है। मुनिराज के पास में एक सूत मात्र भी परिग्रह नहीं है। एवं परिग्रह रखने का भाव भी नहीं है। इस कारण से मुनिमहाराज के बाह्य लिंग यथाजात रूप है। अर्थात् तुरन्त के जन्मे हुए बालक की तरह नग्नता और विकार रहित उनकी अवस्था है। यथाजात शब्द यह दिखलाता है कि यदि बालक सूत सहित जन्म लेवे तो मुनि सूत रख सकता है। यदि बालक चश्मा सहित जन्म लेवे तो मुनि चश्मा रख सकता है। ऐसे अपरिग्रह महाव्रत संयुक्त है। वे मुनि राज चार हाथ भूमि देख कर कि मेरे द्वारा किसी जीव का घात न हो जावे ऐसी इर्या समिति रूप पुण्य भाव सहित मौन से गमन करते हैं। गमन करते समय मुनिराज को बोलने का भाव होता ही नहीं है। क्योंकि बोलने में उपयोग लगेगा। तब भूमि शोधन में उपयोग लग नहीं सकता है। क्योंकि एक साथ में ही दो उपयोग होते नहीं हैं। जब बोलने का भाव होगा तब खड़ा रह कर बोलेगा। परन्तु चलने की क्रिया करते हुए नियम

पूर्वक मौन भाव से गमन करते हैं। इस प्रकार वे ईर्या समिति युक्त होते हैं। वे मुनिराज आगम अनुकूल ही सदा जीवों के कल्याणकारी वचन सहित भाषा समिति युक्त होते हैं। मुनिराज को उद्दिष्ट आदि ४६ दोष टाल कर तथा ३२ अन्तराय और १४ मल दोष टाल कर व्रतिपरि संख्यान तप सहित पुण्य भाव युक्त शुद्ध आहार लेने का विकल्प उठता है। शुद्ध आहार लेने का भाव पाप भाव है क्योंकि, आहार संज्ञा जब पाप भाव है। जब आहार की उदीरणा तीव्र पाप भाव में ही होती है। परन्तु ४६ दोष टालने का भाव ३२ अन्तराय और १४ मल दोष टालने का भाव पुण्य भाव है। इस भाव का नाम एषणा समिति है।

आहार सम्बन्धी ४६ दोषों का वर्णन

१६ उद्गम दोष—जो दोष दाता और पात्र दोनों के कारण आहार में उत्पन्न होते हैं।

१६ उत्पादन दोष—जो दोष पात्र के आधार से उत्पन्न होते हैं।

१४ आहार सम्बन्धी दोष—

१६ उद्‌गम दोषों का स्वरूप—

१ औद्देशिक दोष—संयमी मुनिराज के निमित्त भोजन बनाना सो औद्देशिक दोष है।

२ अध्यधि दोष—संयमी मुनिराज को देख कर भोजन तैयार करने का आरम्भ करना सो अध्यधि दोष है।

३ पूत्ति दोष—प्राशुक आहारादि भोजन में अप्राशुक भोजन मिलाना सो पूत्ति दोष है।

४ मिश्र दोष—शुद्ध प्रासुक आहार में अशुद्ध अप्रासुक आहार मिलाना एवं प्रासुक तैयार हुआ भोजन अन्य भेषधारियों के साथ तथा गृहस्थों के साथ संयमी साधुओं को देने का उद्देश्य करे सो मिश्र दोष है।

५ स्थापित दोष---जिस बासन में पकाया था उससे दूसरे भाजन में पके भोजन को रख कर अपने घर में तथा दूसरे के घर में जाकर उस अन्न को रख देना उसे स्थापित दोष कहते हैं।

६ बलि दोष--कुदेवादिक के पूजन निमित्त बना हुआ भोजन सो बलि दोष है।

७ प्रावर्तित दोष—पात्र को पड़गाहे पीछे काल की हानि वृद्धि करना अथवा नवधा भक्ति में शीघ्रता व

विलम्ब करना सो प्रावर्तित दोष है।

८ प्राविशकरण दोष—अंधेरा जान दीपक का उजाला करना सो प्राविशकरण दोष है।

९ क्रीत दोष—संयमी को भिक्षा के लिये प्रवेश करने पर गाय आदि देकर बदले में भोजन लेकर साधु को देना सो क्रीत दोष है।

१० प्राम्ष्य दोष—साधुओं को आहार कराने के लिये दूसरे से उधार सामग्री माँग कर आहार देना सो प्राम्ष्य दोष है।

११ परिवर्त दोष—साधुओं को आहार देने के लिए अशुद्ध सक्कर देकर शुद्ध सक्कर आदि लेकर आहार दान में देना सो परिवर्त दोष है।

१२ अभिघट दोष—अभिघट दोष के दो- भेद हैं।

(१) देशाभिघट-(२) सर्वाभिघट।

देशाभिघट के दो भेद।

(१) आचिन्न (२) अन्नाचिन्न।

आचिन्न—पंक्ति बद्ध सीधे तीन अथवा सात घरों से आया आहार ग्रहण करने योग्य सो आचिन्न है।

अन्नाचिन्न—इससे उल्टे सीधे घर न ह। ऐसे सात घर से लाया हुआ आहार

अथवा आठवाँ आदि घर से लाया हुआ आहार ग्रहण करने योग्य नहीं सो अन्नाचिन्न है।

सर्वाभिघट के चार भेद हैं (१) स्वग्राम (२) परग्राम (३) स्वदेश (४) परदेश।

स्वग्रामाभिघट दोष—पूर्व दिशा के मोहल्ले से पश्चिम दिशा के मोहल्ले में भोजन आदि ले जाना स्वग्रामाभिघट दोष है। इसी तरह शेष तीन भेद भी जानना।

१३ उद्भिन्न दोष--- बँधी वा शील लगी हुई वस्तु को खोलकर संयमी साधु को देना उद्भिन्न दोष है।

१४ मालारोहण दोष---रसोई के स्थान से ऊपर की मंजिल में रखी हुई वस्तु नसैनी पर चढ़ निकाल कर साधु को देना सो मालारोहण दोष है।

१५ आछेद्य दोष---पर को भय दिखाकर भोजन देना सो आछेद्य दोष है।

१६ अनिसार्थ दोष---दाता असमर्थ होने पर भी दान देवे सो अनिसार्थ दोष है।

१६ उत्पादन दोषो का स्वरूप—

१ धात्री दोष—गृहस्थ को मंडन-मंजन, क्रीड़ादि धात्री

दोष का उपदेश देकर आहार ग्रहण करना धात्री दोष है।

२ दूत दोष---दाता को परदेश का समाचार कह, आहार ग्रहण करना सो दूत दोष है।

३ निमित्त दोष---अष्टांग निमित्त ज्ञान बताय आहार ग्रहण करना सो निमित्त दोष है।

४ आजीविक दोष---अपनी जाति कुल तपश्चरण बताय आहार ग्रहण करना सो आजीविक दोष है।

५ वनीपक दोष---दातार के अनुकूल बातें कर आहार लेना सो वनीपक दोष है।

६ चिकित्सा दोष----दातार को औषधि बता कर आहार लेना सो चिकित्सा दोष है।

७ से १० कषाय दोष---क्रोध-मान-माया-लोभ पूर्वक आहार लेना सो क्रोध-मान-माया-लोभ नाम का दोष है।

११ पूर्व स्तुति दोष--भोजन के पूर्व दाता की प्रशंसा करना सो पूर्व स्तुति दोष है।

१२ पश्चात स्तुति दोष---आहार किए पीछे स्तुति करना सो पश्चात स्तुति दोष है।

१३ विद्या दोष---आकाशगामिनी आदि विद्या बताकर भोजन करना सो विद्या दोष है।

१४ मंत्र दोष---सर्प, बिच्छूं आदिका मंत्र बताकर आहार लेना सो मंत्र दोष है ।

१५ चूर्ण दोष---शरीर की शोभा (पुष्टता) निमित्त चूर्णादि बताय आहार लेना सो चूर्ण दोष है ।

१६ मूलकर्म दोष—अवश को वश में करने का उपाय बताकर आहार लेना सो मूल कर्म दोष है ।

चौदह आहार सम्बन्धी दोष—

१ शंकित दोष—चार प्रकार के आहार आगम अनुकूल मेरे लेने योग्य हैं या नहीं ऐसे सन्देह सहित आहार लेना सो शंकित दोष है ।

२ मृक्षित दोष---सचिक्कण हाथ या बर्तन पर रक्खा हुआ भोजन ग्रहण करना सो मृक्षित दोष है ।

३ निक्षिप्त दोष---सचित पत्रादि पर रक्खा हुआ भोजन करना सो निक्षिप्त दोष है ।

४ पिहित दोष---सचित पत्रादि से ढका हुआ भोजन करना सो पिहित दोष है ।

५ संव्यव हरण दोष---दान देने की शीघ्रता कर अपने वस्त्र को नहीं संभालना या भोजन को देखे बिना देना संव्यव हरण दोष है ।

६ दायक दोष---जो स्त्री बालक को सजाती हो, मदिरा पीने में लंपट हो, जो रोगी हो, मुर्दे को जला

कर आया हो, नपुंसक हो, वायु आदि से पीड़ित हो, वस्त्रादि ओढ़े हुए न हो, मूत्र आदि करके आया हो, मूर्छा से गिर पड़ा हो, वमन कर आया हो, लोई सहित हो, दासी हो, अर्जिका रक्तपटिका आदि हो, अंग के मर्दन करने वाली हो, अति बालक हो, अधिक बूढ़ी हो, भोजन करते झूठे मुँह हो, पांच महीना आदि गर्भ से युक्त हो, अंधी हो, मुँह से फूँक कर अग्नि जलाना, काठ आदि डालकर आग जलाना, काठ को जलने के लिए सरकाना, राख से अग्नि को ढकना, जलादि से अग्नि को बुझाना, स्नानादि क्रिया करना, दूध पीते बालक को छोड़कर आहार देना इत्यादि क्रियाओं से आहार दे तो दायक नाम का दोष लगता है।

७ उन्मिश्र दोष---सचित से मिला आहार लेना सो उन्मिश्र दोष है।

८ अपरिणत दोष---अग्नि से परिपूर्ण नहीं पका वा जला हुआ भोजन तथा तिल-तंदुल, हरड़ आदि से स्पर्श, रस, गंध वर्ण बदले बिना जल, लेना सो अपरिणत दोष युक्त है।

९ लिप्त दोष---गेरू, हड़ताल-खड़ी आदि अप्रासुक

द्रव्य से लिप्त बर्तन द्वारा दिया हुआ आहार लेना सो लिप्त दोष युक्त है।

१० परित्यजन दोष---दाता द्वारा पात्र के हस्त में स्थापित किया हुआ आहार पाणिपात्र में से गिरता हो अथवा पाणि (कर) पात्र में आये हुए आहार को छोड़ और आहार लेकर ग्रहण करना सो परित्यजन दोष युक्त है।

११ संयोजन दोष---शीतल भोजन में उष्ण या उष्ण भोजन में शीतल भोजन अथवा जल मिलाना सो संयोजन दोष युक्त है।

१२ अप्रमाण दोष---गृद्धिता से प्रमाण से अधिक भोजन करना अप्रमाण दोष युक्त है।

१३ अंगार दोष---गृद्धिता युक्त आहार करना अंगार दोष युक्त है।

१४ धुमदोष---भोजन प्रकृति विरुद्ध है ऐसे ग्लानि युक्त भोजन करना सो धुम दोषयुक्त है।

मुनिराज को भोजन के अंतरायों का स्वरूप मूलचार में पिण्ड शुद्धि अधिकार में गाथा नं० ४९५ से ५०० में लिखा है कि---

(१) साधु के चलते समय वा खड़े रहते समय ऊपर जो कौआ आदि बीट करे तो वह काक नामा

अंतराय है। (२) अशुचि वस्तु से चरण लिप्त हो जाना सो अभेध्य नामका अन्तराय है। (३) आहार लेते समय वमन होजाना सो छर्दि नामका अन्तराय है। (४) आहार लेते वक्त कोई आहार का निषेध करे सो रोध नामका अन्तराय है। (५) अपने वा दूसरे के रक्त निकलता देखना रुधिर नामका अन्तराय है। (६) कोई कु दुःख से आँसू निकलते देखना सो अश्रु पात नामका अन्तराय है। (७) रुदन होते देख घुटने के नीचे हाथ से स्पर्श करना सो जान्वध परामर्श नामका अन्तराय है। (८) गोडके प्रमाण काठ के उपर से उलंघना सो जानुपरि व्यत्ति क्रम नामका अन्तराय है (९) नाभि से नीचा मस्तक कर निकलना सो नाभ्यधो निर्गमन नाम का अन्तराय है। (१०) त्याग की गई वस्तु का भक्षण करना सो प्रत्यारव्यान सेवना नाम का अन्तराय है। (११) सामने जीववध होना सो जंतु वध नाम का अन्तराय है। (१२) कौआ आदि ग्रास ले जावे सो काकादि पिण्ड हरण नाम का अन्तराय है। (१३) पाणिपात्र से (कर से) पिंड का गिर जाना सो पाणितः पिंड पतन नाम का अन्तराय है। (१४) पाणिपात्र में (कर में) किसी जीव का मर जाना सो पाणिजन्तु वध नाम का अन्तराय है। (१५) माँस का दीखना सो माँसादि दर्शन नाम का

अन्तराय है। (१६) देवादिकृत उपद्रव होना सो उपसर्ग नाम का अन्तराय है। (१७) दोनों पैरों के बीच में कोई जीव गिर जाय सो जीव संपात नाम का अन्तराय है। [१८] आहार देने वाले के हाथ से भोजन गिरजाना सो भाजन संपात नाम का अंतराय है। [१९] अपने उदर से मल निकल जाय सो उच्चार नाम का अंतराय है। [२०] मूत्रादि निकल जाना सो प्रस्रवण नाम का अन्तराय है। [२१] चाँडालादि अभोज्य के घर में प्रवेश हो जाना सो अभोज्य गृह प्रवेश नाम का अन्तराय है। [२२] मूर्छादि से आप गिर जाना सो पतन नाम का अन्तराय है। [२३] भोजन करते बैठ जाना सो उपवेशन नाम का अन्तराय है। [२४] कुत्ता आदि का काटना सो सदेश नाम का अन्तराय है। [२५] हाथ से भूमि को छूना सो भूमि संस्पर्श नाम का अन्तराय है। [२६] कफ आदि मल का फेकना सो निष्टीवन नाम का अन्तराय है। [२७] पेट से कृमि [कीड़ों] का निकलना सो उदर कृमि निर्गमन नाम का अन्तराय है। [२८] विना दिया किंचित मात्र भी ग्रहण करना सो अदत्त ग्रहण नाम का अन्तराय है। (२९] अपने या अन्य के तलवार आदि से प्रहार हो प्रहार नाम का अन्तराय है। [३०] ग्राम जले सो ग्रामदाह नाम का

अंतराय है। [३१] पाँव से भूमि से उठा कर कुछ लेना या देना किंचित ग्रहण नाम का अंतराय है। [३२] हाथ द्वारा भूमि से कुछ उठाना सो करेण किंचित ग्रहण नाम का अंतराय है। ये काकादि बत्तीस अंतराय तथा दूसरे भी चांडालादि स्पर्श, कलह, इष्टमरण, आदि बहुत से भोजन त्याग के कारण जानना। तथा राजादिका भय होने से, लोक निन्दा होने से संयम के लिये वैराग्य के लिये आहार का त्याग करना चाहिए। पृष्ठ १९४-१९५ चौदह मल दोष के नाम--मूलाचार गाथा ४८४ में लिखा है कि—

णहरोम जन्तु अट्ठी कण कुड्य पूयि चम्मरु हिरमंसाणि।
वीय फलकंद मूलाछिण्णाणिमलाचउद्सा होंत्ति ॥४८४॥

अर्थ—नख, रोम [बाल], प्राणरहित शरीर, हाड़, गेहूँ आदि का कण, चावल का कण, खराब लोही [राध]; चाम, लोही, मॉस, अंकुर होने योग्य गेहूँ आदि, आम्र आदि फल, कंद, मूल, ये चौदह मल हैं, इनको देख कर आहार त्याग देना चाहिए। पृष्ठ १८९।

मुनिराज कमण्डल शास्त्र उठाते रखते हैं तब दया सहित अर्थात् प्रथम पीछी से झाड़ कर बाद में ही उठाते रखते हैं। इसी प्रकार वे आदान निक्षेपण समिति

सहित होते है। मुनिराज लघु शंका तथा दीर्घ शंका जहॉ जीव जन्तु न हो ऐसी प्राशुक भूमि में जंगलों में ही जाते हैं। उनको कभी टट्टी आदि घर मे जाने का भाव होता ही नहीं है। ऐसे वे प्रतिष्ठापन समिति सहित हैं। कैसी भूमि में लघु शंका तथा दीर्घ शंका के लिये जावें उसके विषय में लिखा है किः—

वणदाहकिसि मसिकदे थंडिल्लेणुपरोधे वित्थिण्णे।
अवगदजंन्तु विवित्ते, उच्चारादी विसज्जेज्जो॥

अर्थः—दावाग्नि से जला हुवा प्रदेश, हल का जुता हुवा स्थान, श्मशान भूमि का प्रदेश, खार सहित भूमि, लोग जहां रोके नहीं ऐसी जगह, विशाल स्थान, त्रस जीव रहित स्थान, जन रहित स्थान ऐसी जगह में मुनिराज मल मूत्रादि का त्याग करें।

मुनिराज निस्पृही तथा निरपेक्ष, जिसने पांच इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषय के प्रति राग को जीत लिया है। जिस कारण वह जितेन्द्रिय जिन कहा जाता है। संसार के किसी पदार्थ के प्रति उसको राग द्वेष नहीं है। बहुत गर्मी पड़ने से ऐसा भी विकल्प उठता नहीं है कि गरमी सता रही है। महान् शीत पड़ने पर भी ऐसा विकल्प उठता नही है कि शीत सता रहा है। मुनिराज छः आवश्यक क्रियाओं को प्रमाद रहित नियम से करते

हैं। वे छः क्रिया निम्न प्रकार हैं। [१] सामायिक [२] २४ तीर्थंकरों की स्तुति [३] एक तीर्थंकर की स्तुति [४] दिन में दो बार प्रतिक्रमण [५] कार्योत्सर्ग [६] अपने लगे हुये दोषों के निवारण के लिए प्रायश्चित लेना। इस प्रकार अवश्य करने योग्य क्रियाओं को करते हैं। मुनिराज अचेलक मूल गुणसहित हैं। जिसका बाह्यलिंग तुरन्त के जन्मे हुए बालक जैसा नग्न तथा विकार रहित है। नग्नता का किस प्रकार से पालन करे। उस विषय में कहा है कि !

वत्थाजिण वक्केण य अहवा पत्तादिणा असंवरणं।
णिव्भूशण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पूज्जं ॥३०॥

अर्थ:—कपास, रेशम, रोम, तीन के बने हुये वस्त्र, मृगछाला आदि, चर्म, वृक्षादि की छाल से उत्पन्न, सन आदि के टाट, पत्ते, त्रण की बनी हुई चटाई, घास, इनसे शरीर का आच्छादन करने का भाव नहीं होता है। कड़े आदि आभूषणों से भूषित होने का भाव नहीं होता है। सयंम के विनाशक द्रव्यों के रखने का भाव नहीं होता है। ऐसे तीन जगत को पूज्य वस्त्रादि बाह्य परिग्रह रहित, अचेलक व्रत सहित मुनिराज होते हैं।

मुनिराज नियम से भूमि पर ही शयन करते हैं— घास, चटाई, तख्ते पर सोने का विकल्प उन्हें उठता ही

नहीं है। क्योंकि ऐसी वस्तु के प्रति उनको राग नहीं होता है। भूमि में सोने से कंकर आदि चुभते हैं तो भी उसका विकल्प जिनको नहीं है ऐसे वे भूमि शयन व्रत सहित हैं।

मुनिराज को स्नान करने का भाव होता ही नहीं है क्योंकि वह शरीर से उदासीन हैं। धूप के दिन में पसीना आ जाने से धूल चिपकती है तो भी विकल्प उठता नहीं है कि उसको साफ करें। शरीर का संस्कार तथा सजावट करने का भाव होता ही नहीं है। कहा भी है कि:—

मुहणायणादंत धोयणमुव्वट्टण पादधोयणं चेव।
संवाहण परिमद्दण सरीर संठावणं सव्वं ॥ ८३७ ॥
धूवणवमण विरेयण अंजण अब्भंग लेवणं चेव।
णत्थुयवत्थियकम्मं सिरवेज्झं अप्पणो सव्वं ८३८॥

अर्थः—मुख नेत्र और दाँतो का धोना, सोधना, परवालना, २ बटना करना गैर धोना अंग मरदन कराना मुट्ठी से शरीर का ताड़न करना, काठ के यन्त्र से शरीर का संस्कार करना, कंठ शुद्धि के लिये वमन करना, औषधादिक द्वारा दस्त लाना, नेत्रों में अंजन लगाना, तैल मर्दन करना, चन्दन कस्तुरी का लेप करना, सलाई बत्ती आदि से नाशिका कर्म वस्ती कर्म करना, नंसों से

खून का निकालना, यह सब संस्कार करने का भाव मुनि अवस्था में होता ही नहीं है। ऐसे स्नान का अभाव रूप व्रत सहित है।

मुनिराज को दाँत साफ करने का भाव होता ही नहीं है। अंगुली डाल कर जीभ व दाँत साफ करने का भाव होता ही नहीं है। क्योंकि आगम द्वारा मुनि जानते हैं कि मुख में असंख्यात सम्मूर्च्छन त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। जिनकी आयु श्वांस के १८ वे भाग में है। ऐसा मुख साफ होता ही नहीं है। वहाँ भी शरीर से उदासीन वृत्ति एवं जीव रक्षा करने का ही भाव है। ऐसे दन्त धोवन का अभाव रूप व्रत सहित है।

मुनिराज केश लोंच जंगल में ही एकान्त में करते हैं उन के भीतर में मान कषाय का अंश मात्र नहीं है। दुनियाँ को केश लोंच दिखाऊँ ऐसा भाव उनमें पैदा ही नहीं होता है। बालों में जीव जन्तु न पड़ जावें इसी कारण से केश लोंच करते है। उत्कृष्ट मार्ग दो मास में एक बार केश लोंच करने का है। मध्यम मार्ग तीन मास में एक दफा केश लोंच करने का है। जघन्य मार्ग चार मास में एक दफा केश लोंच करने का है। शरीर के प्रति अनुराग छोड़ने का भाव उन्हें रहता है। केश लोंच जड़ की क्रिया है। परन्तु शरीर के प्रति अनुराग न होवे, उसी प्रकार केश

लोंच व्रत संयुक्त हैं। मुनिराज खड़े खड़े अपने कर पात्र में ही भोजन लेते हैं क्योंकि बैठ कर भोजन लेने में भोजन के प्रति अनुराग विशेष बढ़ता है। शरीर में शक्ति न होवे, ऐसी हालत मे भी मुनिराज को बैठ कर भोजन लेने का भाव नहीं होता है। यदि बैठ कर भोजन लेने का भाव हो जावे तो बाह्य में नग्नता होते हुए वह जीव अपने गुणस्थान से गिर जाता है। भोजन भी शुद्ध, निर्दोष लेते हैं। भोजन के प्रति अनुराग नहीं है। परन्तु क्षुधा नाम के रोग को मात्र मिटाने के लिये औषधि के के तौर से लेते हैं। भोजन के राग से भी उदासीन हैं। अपनी दृष्टि करपात्र में ही रखते हैं। परन्तु गृहस्थ का बड़प्पन एवं स्त्री की सुन्दरता देखने का भाव उनमें होता ही नहीं है। इतना तो नहीं परन्तु स्त्री ने किसी प्रकार की चूड़ी पहनी है, उस पर भी उनका ध्यान नहीं जाता है। आहार भी भिक्षा चर्या से उनोदर पूर्वक रस की अपेक्षा से रहित लेते है। कहा भी है कि:—

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जहालद्धं।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्ख ण मधुमंसं।२२९॥

अर्थः—वास्तव में वह आहार (युक्त आहार) एक बार उनोदर यथा लब्ध भिक्षा चरण से दिन में रस की

अपेक्षा से रहित और मधु, माँस रहित होता है।

शंका—श्रावक मधु मॉस नहीं लेते हैं तब मुनि महाराज मधु मॉस रहित आहार लेवें ऐसा लिखने का क्या कारण है ?

समाधानः—जैन नाम धराने वाले अन्य मतों में मधु मॉस का आहार, लेने की रीति दिखलाई है उसके निषेध के लिये यह बात लिखी है। श्वेताम्बर ग्रन्थ के आचारंग सूत्र में जिसका अनुवाद प्रोफेसर रवजी भाई देवराज कच्छ कोडाई वाला ने किया है उसका पृष्ठ नं. १३४ श्लोक न० ६३० में मधु माँस मुनि ले सकता है एवं प्रशम रति प्रकरण की गाथा नम्बर १४५ पृष्ट नं० १००-१०१ में भी लिखा है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुकूल अकल्प्य वस्तु भी कल्प हो जाती है। उस के निषेध के लिये यह बात लिखी है। धर्मात्मा जीव को ऐसा आहार लेने का भाव कभी नहीं होता है। गृहस्थ अव्रत अवस्था में भी मांस, मदिरा का राग सहज छूट जाता है। तब मुनि पर्याय में उस प्रकार का राग कैसे हो सकता है। उसी प्रकार मुनिराज खड़े २ करपात्र गुण सहित हैं।

मुनिमहाराज एक बार ही आहार जल लेते हैं। वह भी नवधा भक्ति पूर्वक ही लेते हैं। नवधा भक्ति में एक

भी भक्ति कम करे या गलत करे तो मुनि महाराज जानते हैं कि इस जीव को मुनि विधि का ज्ञान नहीं है। वह शुद्ध आहार कैसे दे सकता है। ऐसा विकल्प उठने से आहार छोड़कर और घर में भिक्षा चरण के लिए निकल जाते हैं। मुनिराज पात्र के घर से ही आहार लेते हैं। परन्तु कुपात्र, अपात्र के घर का आहार लेने का भाव उनमें कभी नहीं होता है। कुपात्र अपात्र को न मुनि पर्याय का ज्ञान है न आहार की विधि का ज्ञान है न भक्ष्याभक्ष्य का ज्ञान है। ऐसे जीवों के हाथ से निस्पृही गुरू आहार लेने की कामना करते ही नहीं हैं। उसी प्रकार २८ मूल गुणों का यथार्थ पालन करने वाले मुनि राज होते हैं। मूल गुण में दोष लग जावे तो मुनि पर्याय का नाश हो जाता है। क्योंकि जो जीव बाह्य आचरण में दोष लगाते हैं उनका आभ्यन्तर भाव नियम से बिगड़ा हुआ है वह जीव मुनि पर्याय का पालन कैसे कर सकता है। वह मुनिराज आगम अनुकूल २२ परिषह को जीतते हैं। कौन से हैं वे २२ परिषह। [१] क्षुधा [२] तृषा [३] शीत [४] उष्ण [५] दंस-मशक [६] नग्नता [७] अरति [८] स्त्री [९] चर्या [१०] निषद्या [११] शय्या [१२] आक्रोश [१३] वध [१४] याचना [१५] अलाभ [१६] रोग [१७] तृण स्पर्श [१८] मल [१९] सत्कार

पुरुस्कार [२०] प्रज्ञा [२१] अज्ञान [२२]अदर्शन। इन २२ परिषह को जीतते हैं। इन दुखों की वेदना मुनि पर्याय में होती ही नहीं है। इतना तो उनकी आत्मा बलवान है। गृहस्थ की अवस्था में और मुनि अवस्था में महान् अन्तर है। यद्यपि दोनों मनुष्य हैं। अज्ञानी जीव अपनी कल्पना द्वारा हमको शीत लगती है इसी कारण मुनि को भी शीत लगे ऐसी दलील जो करते हैं वे अपने अज्ञान भाव का प्रदर्शन करते हैं। मुनि महाराज को अपने राग से नहीं मापना चाहिए। परन्तु वीतराग भाव से मापना चाहिए। गृहस्थ और मुनि की पर्याय में महान् अन्तर है। गृहस्थ एक करोड़ पूर्व तक ऐलक पद की रक्षा करे तो भी १६ वे स्वर्ग से आगे नहीं जा सकता है। जब मुनि महाराज दो घड़ी मात्र अपने स्वभाव में स्थिर हो जाय तो केवल ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। जिस केवल ज्ञान लेने में आदिनाथ भगवान को एक हजार वर्ष लगा वही केवल ज्ञान भरत महाराज ने दो घड़ी में ही प्राप्त किया यह मुनि पर्याय की उत्कृष्टता दिखलाता है। मुनिराज परिषह को कैसे जीतते हैं? वह स्थूल दृष्टान्त से दिखाया जाता है। जैसे महीने के उपवास के पारणे में मुनिराज आहार ले रहे हैं। इतने में आहार में से एक बाल निकल आया जिसको देखते

ही आहार में अन्तराय आ गया। आहार लेने की भावना थी। परन्तु बाल निकलने से आहार लेने के राग का त्याग कर देते हैं। यदि मुनिराज ऐसा विचार करे या मुख से बोल देवे कि मुनि का एक दफा आहार पानी है। आपको सावधानी से आहार देना चाहिये। यह विकल्प क्षुधा नाम के परिषह का नहीं है। परन्तु आहार रूपी इष्ट पदार्थ का त्याग करने का आर्त ध्यान रूप परिणाम है। आहार लेने का भाव पाप भाव था। अन्तराय आने से उस पाप भाव को छोड़ कर ध्यान अध्यन में भाव लगा देना। उसी का नाम परिषह जीतना है। यह भाव भी धर्म भाव नहीं है। परन्तु पुण्य भाव है।

शंका— क्षुधा तो लगी है। वहाँ ध्यान अध्यन में मन कैसे लगे ?

समाधान—जैसे एक व्यापारी को बहुत क्षुधा लगी है। समय भी भोजन लेने का हो चुका है, तब वह दुकान से पगड़ी आदि पहन कर भोजन करने के लिए जाने को तैयार होता है, दुकान की सीढ़ियाँ उतर रहा है। इतने में एक ग्राहक आ जाता है। और कहता है, कि सेठ जी कपड़ा दिखलाईये तब वह व्यापारी तुरन्त वापिस लौटता है। और पगड़ी उतार कर

माल दिखाने लग जाता है। माल दिखाते-दिखाते दो घण्टे चले गये तो भी वहाँ भूख याद आती ही नहीं है। क्योंकि भूख की जो इच्छा थी उससे प्रबल इच्छा धन कमाने की आ जाने से भूख की इच्छा से मन हट जाता है। उसी प्रकार मुनिराज खाने की इच्छा मिटा उससे कही अधिक प्रबल इच्छा ध्यान अध्ययन की कर के उसमें मन लगाता है। इस कारण से क्षुधा याद आती नहीं है। ऐसे परिणाम का नाम क्षुधा परिषह को जीतना कहा जाता है। यह भाव भी पुण्य भाव का है। खाने की इच्छा का राग मिट जाना तथा ध्यान अध्ययन की इच्छा का राग मिट जाना इसी का नाम धर्म भाव अथवा शुद्धोपयोग है।

मुनिराज व्यवहार रत्न मय युक्त है। जो दस प्रकार के व्यहार धर्म का पालन करते हैं। वह दस इस प्रकार हैं। (१) उत्तम क्षमा (२) उत्तम मार्दव (३) उत्तम आर्जव (४) उत्तम शौच (५) उत्तम सत्य (६) उत्तम संयम (७) उत्तम तप (८) उत्तम त्याग (९) उत्तम आंकिचन (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य। मुनिराज सुख दुखः, तृण कंचन, लाभ अलाभ, शत्रु-मित्र, निन्दा प्रशंसा, और जीवन मरण में मध्यस्थ हैं। अर्थात् जिनका समभाव रूप वर्तावं है। पूजा करने वाले के प्रति राग नहीं है। और

लाठी से प्रहार करने वाले के प्रति द्वेष नहीं है। इतना ही नहीं परन्तु मुख से इतना भी न बोले कि भैया मुझ को क्यों मारते हो। ऐसे उत्तम क्षमा भाव सहित हैं। वह मुनिराज उत्तम ज्ञान युक्त हैं। तथा घोर तपश्चरण करने की जिनकी शक्ति है। तो भी जिनकी आत्मा में ज्ञान तथा तप का मद नहीं है। ऐसे उत्तम मार्दव गुण सहित हैं। मुनिराज मन में कुटिलता का चितवन नहीं करते। काय से भी वक्रता नहीं करते एव वचन से भी वक्रता रूप बोलते नहीं हैं। मुनिराज अपने दोषों को छुपाते नहीं है। गुरू सामने अपना दोप प्रगट करते हैं। ऐसे उत्तम आर्जव धर्म सहित हैं। मुनिराज साम्यभाव रूप है। अर्थात् राग द्वेष रहित, सन्तोष रूप परिणाम से तृष्णा और लोभ रूप मल को आने नहीं देते। मुनि राज के भोजन में लालसा ही नहीं ऐसे उत्तम शौच धर्म सहित हैं। मुनिराज जिन आगम के अनुकूल ही वचन बोलते हैं। परन्तु ऐसा प्रतिपादन कभी नहीं करें कि समयसार ग्रन्थ गृहस्थ के पढ़ने योग्य नहीं हैं। संसारी जीवों का कल्याण कैसे हो ऐसी भावना सहित उत्तम सत्य धर्म सहित हैं। मुनिराज स्व तथा पर जीवों की रक्षा में तत्पर हैं। जीवों का अहित वे कल्पना में भी नहीं लाते है। संयम की साधना कैसे हो ऐसा निरंतर

भाव वे रखते है। जब तक शरीर संयम भाव की साधना में प्रयुक्त है तब तक ही उसको आहार देने का भाव रखते है। यदि अपनी ज्ञान ज्योति हीन हो, और यथार्थ सोधन क्रिया में बाधा आवे तो मुनिराज चारो प्रकार के आहार का त्याग कर समाधि मरण स्वीकार कर शरीर को छोड़ देते हैं। मैं चश्मा रखू ऐसा भाव मुनि राज में होता ही नहीं है। ऐसे उत्तम संयम धर्म सहित हैं। कहा भी है कि संयम पालन करने में कितनी सामग्री चाहिये।

भिक्खं चर वस रण्णे थोवं, जेमेहि मा बहूजंप।
दुखं सह जिण णिद्दा, मत्तिं भावेहि सुठ्ठु वेरग्गं॥
८९५॥

अर्थः—हे! मुनि! सम्यक् चारित्र पालना है तो भिक्षा भोजन कर, वन में ही रहे, थोड़ा आहार कर, बहुत मत बोल, दुख को सहन कर, निद्रा को जीत, मैत्री भाव का चितवन कर, अच्छी तरह वैराग्य परिणाम रख, यह चारित्र पालन करने की सामिग्री है। मुनिराज इस लोक और परलोक के अपेक्षा रहित अनेक प्रकार के काय-क्लेश करते हैं। शीत काल में नदी के तट पर जाकर कार्योत्सर्ग कर, खड़े रह कर, शीत परिषह को जीतते हैं। उष्ण काल में पर्वत के शिखर पर मध्यान्ह

में खड़े रह कर आतापनयोग उष्ण परिषह को जीतते हैं। वर्षा ऋतु में पेड़ के नीचे बैठ कर, ध्यान मुद्रा धर डॉस मच्छर आदि की परिषह जीतते हैं। अपनी शक्ति अनुकूल अनशन करते हैं। कभी ऊनोदर तप करते हैं अर्थात् पुरुष का ३२ ग्रास आहार माना है। रोज एक-एक ग्रास कम खाना ऐसे कम करते करते एक ग्रास तक पहुँचना बाद में एक-एक ग्रास रोज बढ़ाते बढ़ाते ३२ ग्रास तक आना। मुनिराज अटपटी ऑखड़ी लेकर आहार में निकलते है। ऐसी ऑखड़ी यदि-दो चार दिन तक पूर्ति न होवे तो भी अन्तरंग में विकल्प उठे नहीं और मैंने इस प्रकार की ऑखड़ी ली है। यह दूसरे जीवों को कहने का भाव भी उठता नहीं है। ऐसे उत्तम तप सहित है। मुनिराज मिष्ठ भोजन एवं राग द्वेष के कारण बाह्य साधनों के भी त्यागी हैं। वस्तिका में भी जिनका अनुराग नहीं है। जंगलों में कोई पुराना मकान मिल जाय तो उसमें ठहर जाते हैं। तो भी उस मकान का फाटक बन्द करने का जिनको भाव होता नहीं है। यह भाव वस्तिका का स्वामी वने तभी हो सकता है। उस वस्तिका में अन्य कोई त्यागी मुसाफिर तथा तिर्यंच आ जावे तो इसमें जगह नहीं है, ऐसा कहने का भी जिनको भाव होता नहीं है। मुनिराज को

अपने शिष्य के प्रति भी राग नहीं है। ऐसे उत्तम त्याग धर्म सहित है। शिष्य आदि के प्रति रागहो जाय तो मुनि पर्याय का नाश हो जाता है। कहा भी है कि।

वरं गणपवे सादो विवाहस्स पवेसणं।

विवाहे राग उप्पत्ति गणो दोसाण मागरो॥ ९८३॥

अर्थः—साधु कुल में शिष्य आदि में मोह करने की अपेक्षा विवाह में प्रवेश करना ठीक है। क्योंकि विवाह में स्त्री आदि के ग्रहण से राग की उत्पत्ति होती है। और गण तो कषाय, राग द्वेष आदि सब दोषों की खान है।

मुनिराज सूत मात्र भी रखने की इच्छा नहीं करते, पीछी, कमंडल में भी जिसका ममत्व भाव नहीं है। शरीर का त्याग नहीं हो सकता है। तो भी शरीर के प्रति मुर्छा वुद्धि हैं नहीं। इस कारण से पर पदार्थ से उदासीन हैं। ऐसे उत्तम आकिंचन धर्म सहित हैं।

शंकाः—शास्त्र ज्ञान का उपकरण है, उसी प्रकार चश्मा भी ज्ञान का उपकरण है। लालटेन भी ज्ञान का उपकरण, जिसके द्वारा रात्रि में पढ़ा जा सकता है, चटाई भी जीव दया का उपकरण है, घड़ी रखने से यथा योग्य काल में सामायिक आदि कर सकते हैं, ऐसे उपकरणों को रखने में क्या वाधा है?

समाधान—ये उपकरण नहीं हैं। ये सब मूर्छा बिना रखा नहीं जा सकते हैं एवं याचना किये बिना नहीं मिल सकते हैं। इसलिये ये उपकरण न हो कर मुनि पर्याय के घातक हैं। जहाँ देह को परिग्रह कहा गया तब ये वस्तुऐं नियम से परिग्रह ही हैं। ऐसा परिग्रह रखने का भाव मुनिराज को नहीं होता हैं। प्रवचनसार के गाथा नम्बर २२४ में लिखा है कि—

किं किंचण त्ति तक्कं अपुणब्भव कामिणोध देह वि।
संग त्ति जिणवरिंदा णिप्पड़िकम्मत्त मुद्दिठ्टा ॥२२४॥

अर्थः—जब कि जिन वरेन्द्रो ने मोक्ष भिलासी के "देह परिग्रह है" यह कह कर देह में भी अप्रति कर्मत्व (संस्कार रहितत्व) कहा तब उनका यह स्पष्ट आशय है कि उसके अन्य परिग्रह तो कैसे हो सकता है ?

शंका—जिन आगम में उत्कृष्ट तथा अपवाद मार्ग दिखलाया है। चश्मा, चटाई, घड़ी, लालटेन आदि को अपवाद मार्ग में मानने में क्या बाधा आती है ?

समाधान—यह अपवाद मार्ग नहीं है। परन्तु भ्रष्ट मार्ग है। अपवाद मार्ग उसी का नाम है जिसमें संयम का घात न हो। परन्तु ये परिग्रह रखने से संयम का घात होता है। क्योंकि प्रथम तो इन पदार्थों के लिये असंयमी जीवों के प्रति याचना करनी पड़ेगी। और

दूसरी बात मूर्च्छा विना ये वस्तुऐं रखी नही जाती है। इसलिए मोक्ष मार्गी जीव को ऐसी वस्तु रखने का भाव नहीं होता है। जिन आगम में अपवाद मार्ग किसको कहा है। उसका प्रथम ज्ञान कर लेना चाहिये। जिससे गुरू भक्ति करने में हमारी आत्मा यथार्थ लाभ उठावे। प्रवचनसार ग्रन्थ के गाथा नम्बर २२५ में अपवाद मार्ग दिखलाया है कि--

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरुवमिदि भणिदं।
गुरूवयणं पियविणओसुत्तज्भयणं चणिद्दिठ्टं॥ २२५॥

अर्थः—यथा जात रूप (जन्म जात नग्न) लिंग जिन मार्ग में उपकरण कहा गया है। गुरू के मुख से उपदेश सुनने के राग को तथा सूत्र के अध्ययन करने के राग को और अपने से विशिष्ट ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार वाले मुनिराज के प्रति विनय करने के राग को उपकरण कहा गया है। अर्थात् इसको अपवाद मार्ग कहा है। और आत्मा के ध्यान में रहना उसी का नाम उत्कृष्ट मार्ग है। जब आत्मा अपने ध्यान में स्थिर न रहे तब अपवाद मार्ग रूप उपकरण में वर्ताव करे।

मुनिराज को संसार की स्त्रियों को देखकर मन में विकार भाव उत्पन्न नहीं होते हैं इतना ही नहीं परन्तु

जिसके अंग उपांग में विकार देखने में आते नहीं इस प्रकार जिसने काम का मर्दन किया हैं। ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्य सहित हैं। इसी प्रकार मुनिराज व्यवहार दस धर्म का पालन करते हैं। दस प्रकार का व्यवहार धर्म पुण्य भाव है। ऐसे व्यवहार पुण्य धर्म का पालन मिथ्या दृष्टि द्रव्य लिंगी मुनि भी करते है।

नग्न दिगम्बर मुनियों में शक्ति की अपेक्षा से दो भेद किये हैं। एक जिनकल्पी (२) स्थविर कल्पी। (१) जिन कल्पी:—जिन कल्पी उस मुनिराज को कहते हैं जिस में देव, मनुष्य, तिर्यंच द्वारा किये गये उपसर्ग को सहन करने की शक्ति प्राप्त हो गई है। अपने शरीर में रोग आ जाने से भी अपने हाथ से वैयाव्रत करने की भावना नहीं होती है। ऐसे मुनिराज को जिनकल्पी कहा है। ऐसे जिनकल्पी मुनिराज को सिंह व्रत्ति से अकले विहार करने की आज्ञा दी गई है। कहा भी है कि।

तव सुत्त सत्तएगत्त भाव संघडणधिदिसमग्गो य।
पविआआगम वलिओएयविहारी अणुण्णादो ॥१४९॥

अर्थः— तप, आगम, शरीर, वल, अपनी आत्मा में ही प्रेम, शुभ परिणाम, उत्तम संहनन, मन का वल, क्षुधादि न होना। इन गुणोंकर संयुक्त हो तथा तप कर और

आचार सिद्धान्तों का जान कार हो उस जीव को एकल विहारी साधु कहा गया है।

(२) स्थवर कल्पीः—उसको कहते हैं, जिस में देव, मनुष्य, तिर्यंच द्वार आये उपसर्ग को सहन करने की शक्ति नहीं है। रोगादि आ जाने से वैयाव्रत कराने की भावना है। ऐसे मुनियों को स्थवर कल्पी कहा गया है ऐसे स्थवर कल्पी मुनि आचार्य के चरण में ही निवास करें। ऐसे मुनिराज के भीतर में अकेले विहार करने की इच्छा नहीं होती हैं। वे तो आचार्य की आज्ञा में रहना पसन्द करते हैं, परन्तु कोई स्वच्छन्दी मुनि आचार्य की आज्ञा में नहीं रहना चाहता है, और अकेले विहार कर अपनी अनर्गल प्रवृत्ति करता है ऐसे पाखंडी मुनि को आहार दान नहीं देना यही मुनि धर्म की रक्षा करने का उत्तम मार्ग है। कहा भी है किः—

आयरियकुलं मुच्चा विहरदि, समणो य जो दु एगागी।
ण य गेरहदिउवदेसंपावस्समणोत्तिवुच्चदि दु ॥ ९५९ ॥

अर्थ—जो श्रवण संघ को छोड़ कर अकेला विहार करता ह और दिये उपदेश को ग्रहण नहीं करता, वह पाप श्रमण कहा जाता है।

ऐसा पापी श्रमण यद्यपि आचार्य नाम धराता है तो वह स्वयं भी डूबता है और दूसरे जीवों को भी

डुबाता है। ऐसे श्रमणों से दूर रहना ही कल्याण का मार्ग है। कहा भी है कि—

आयरियत्तणमुवणयइ जो मुणी आगमं ण याणंतो।
अप्पणंपिविणासिय अण्णेवि पुणो विणसेई ॥९६३॥

अर्थ----जो मुनि आगम को नहीं जानता अपने को आचार्य मान लेता है वह अपना नाश कर दूसरों को भी नष्ट करता है।

गुणस्थान भाव लिंगी मुनियों के लिये होता है। द्रव्य लिंगी मुनि का तो मिथ्यात्व गुणस्थान ही है। परन्तु व्यवहार से वे भाव लिंगी मुनियों के साथ में रह कर वाह्य आचरण का पालन करते हैं। इस कारण से मिथ्यात्व अवस्था में रह करभी ग्रैवेयकवासी देव वनजाते हैं। परन्तु जो जीव मुनि संघ में रह कर आचार्य की वात नहीं मानते हैं और अनर्गल प्रवृत्ति करते हैं। ऐसे जीवों के लिए यह बात लिखी है। परन्तु भाव लिंगी मुनि में उस प्रकार का वर्ताव होता ही नहीं है। मुनि संघ में भाव लिंगी तथा द्रव्य लिंगी हैं। मुनिभाव लिंगी है या मुनिद्रव्य लिंगीहै, उसका सूक्ष्म निर्णय हमारे ज्ञान का विषय नहीं है। इस कारण से साधारण जीवों को पर्याय का ज्ञान कराने के लिए यह बात लिखी जाती है। मुनि भाव लिंगी मुनियों को लौकिक वात करने का एवं, मंत्र,

डोरा, ज्योतिष आदि देखने का भाव नहीं होता है। तो भी मुनि संघ में रह कर कोई जीव ऐसा कार्य करे तो वह जीव मुनि पर्याय को छोड़कर अपने पतन के मार्ग पर है। प्रवचनसार ग्रन्थ में चारित्र अधिकार में यह बात लिखी है कि।

णिच्छिद सुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजण संसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि॥
२६८॥

अर्थ—जिसने सूत्रों के पदों को और अर्थों को निश्चित किया है जिसने कषायो का समन किया है और जो अधिक तपवान है ऐसा जीव भी यदि लौकिक जनों केसंग को नहीं छोड़ता तो वह संयत नहीं है।

जो जीव भली भाँति संयत हो वह भी लौकिक जनों के संग से असंयत ही होता है, क्योंकि अग्नि की संगति में रहे हुए पानी की भाँति उसे विकार अवश्यम्भावी है। इसीलिए लौकिक संग का सर्वथा निषेध्य ही है। गाथा नम्बर २६९ में भी कहा है कि

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहिं।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजमतवसंपजुत्तोवि॥२६९॥

अर्थः—जो निर्ग्रन्थ रूप से दीक्षित होने के कारण संयम, तप संयुक्त हो उसे भी यदि वह ऐहिक कार्यों

सहित अर्थात् लौकिक ख्याति पूजा लाभ के निमित भूत, ज्योतिष देख देना, मन्त्र तथा डोरा बना देना, वैदिक कार्य कर देना इत्यादि कार्यों में बर्तता हो। ये सब लौकिक कहा गया है। जिस मुनि में उपसर्ग आदि सहन करने की शक्ति नहीं है, ऐसे मुनिराज को अपने से अधिक गुण वाले आचार्य तथा समान गुण वाले मुनिराजों के साथ रहना चाहिए। यदि उस प्रकार की अंतरंग भावना न रही तो वह मुनिराज अपने पद से नियम से गिर जाता है। एवं जो मुनिराज मात्र उत्कृष्ट मार्ग का ही सेवनकर शरीर को अक्रम से नष्ट करता है वह भी जीव-संयम भाव का नाश कर स्वर्ग में असंयमी हो जाता है। कहा भी है कि—"आहारविहारयोऽल्प लेप भयेना प्रवर्तमानस्याति कर्कशा चरणी भूयाक्रमणे शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वान्तसमस्त संयमामृत भारस्य" अर्थात् जो आहार-विहार है, उससे होने वाले अल्प लेप के भय से उसमें प्रवृत्ति न करे तो, अति कर्कश आचरण रूप हो अक्रम से शरीरपात कर देव लोक प्राप्त करके जिसने समस्त संयमामृत का, समूह वमन कर डाला है, उसे तपका अवकाश न रहने से जिसका प्रतिकार अशक्य है ऐसा महान् लेप होता है। जो जीव मात्र क्रमबद्ध ही पर्याय मानते हैं उस जीव को आचार्य देव ने "अक्रम शब्द का प्रयोगकर उन

जीवो के मूख पर ताला लगा दिया है।

मुनिसंघ के नायक गणधर देव एवं आचार्य देव में भी अनेक प्रकार कि ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। तो भी उस ऋद्धि का प्रयोग करने की भावना मुनिराजों में नहीं होती है, क्योंकि वह आत्म-कल्याण करने का कारण नहीं है। परन्तु ऋद्धि का प्रयोग करना आत्मा के पतन का ही कारण है।

व्यवहार से मुनिराज में तीन प्रकार का भेद माना गया है—(१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) मुनिराज।

(१) आचार्यः---जो अन्य जीव को दीक्षा देते हैंऔर मुनि चर्या में किसो प्रकार का दोष हो जावे तो उसको प्रायश्चित आदि दे कर अपने पद में स्थिती करण करने की भावना प्रदान करते हैं। ऐसे जीवों को आचार्य परमेष्ठी कहा जाता है।

(२) उपाध्याय परमेष्ठीः—जो स्वयं आगम अभ्यास में हैं और अन्य मुनिराजों को आगम ज्ञान कराते हैं। ऐसे जीवों को उपाध्याय परमेष्ठी कहा जाता है।

(३) मुनिराजः—जो विषय कषाय को जीतता है और अपनी आत्मा की साधना में रत है, उसी को साधु परमेष्ठी अर्थात् मुनिराज कहा जाता है।

शंकाः—सूत्रजी में पाँच प्रकार के मुनि कहे गये

हैं, उनका क्या स्वरूप है ? अर्थात् पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक मुनि किसे कहते हैं ?

समाधानः—गुणस्थान के अनुसार मुनि के भेद किये गये हैं ये सब भाव लिंगी मुनि के हैं।

पुलाकः—जिस भाव लिंगी मुनि को अपने तपस्वी शिष्य के स्वर्गवास से तथा लघु शिष्य के स्वर्गवास से इष्ट वियोग रूप आर्तध्यान होते हैं तथा अनिष्ट शीष्य के संयोग से अनिष्ट संयोग रूप आर्तध्यान होते हैं, और शरीर में रोग आ जाने से यह रोग कब मिट जावे ऐसे विकल्प उठते हैं, ऐसे छटवें गुणस्थान वर्ती को पुलाक मुनि कहा है। परन्तु मूल गुण में दोष लगे ऐसे जीवों का नाम पुलाक मुनि नहीं है। मूल गुण में दोष लगे ऐसे जीवों को जिनागम में द्रव्यलिंगी मुनि भी नहीं कहा गया है।

बकुशः—छटवॉ, सातवॉ गुणस्थान में जो मुनि असंख्यात दफा आते जाते हैं अर्थात् छटवॉ गुणस्थान से सातवें में जावे और सातवें से गिर कर छटवाँ में आवे। ऐसे मुनि को बकुश संज्ञा कहा गया है।

कुशीलः—जो मुनिराज पुण्य रूपी कुशील भाव को अपने ज्ञानरूपी छेनी द्वारा श्रेणी में काट रहा है, ऐसे आठवें, नवें, दसवें गुणस्थान वर्ती मुनि को कुशील

संज्ञा कहा गया है। कहा भी है कि—"चिद्वृत्तेः परद्रव्य चङ्क्रमण निमित्तमत्यन्तमात्मनासममन्योन्यसंवलनादेकी भूतमपि स्वभावभेदात्परत्वेन निश्चित्यात्मनैव कुशलो मल्ल इव सुनिर्भरं निष्पीडय निष्पीडय कषाय चक्रमक्रमणे जीवं त्याजयति।"

अर्थ—चिद्वृत्तिके लिए परद्रव्य में भ्रमण का निमित्त जो कषाय समूह है वह आत्मा के साथ अन्योन्य मिलन के कारण अत्यन्त एक रूप हो जाने पर भी स्वभाव भेद के कारण उसे पर रूप से निश्चित करके आत्मा से ही कुशल मल्ल की भाँति अत्यन्त मर्दन कर करके अक्रम से उसे मार डालता है। जो जीव मात्र क्रमबद्ध ही पर्याय मानते हैं उन जीव के मुख पर आचार्य देव ने अक्रम शब्द लिखकर ताला मार दिया है।

निर्ग्रन्थः—जिस मुनि ने राग द्वेष रूपी गांठ को छेद कर वीतराग भाव की प्राप्ति की है ऐसे ग्याहरवां बाहरवां गुणस्थान वर्ती मुनि की निर्ग्रन्थ संज्ञा है।

स्नातकः—जिस मुनिराज ने वीतराग भाव सहित अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य की प्राप्ति की है। ऐसे तेरहवें गुणस्थान वर्ती जीव की स्नातक संज्ञा है। ये सब एक अपेक्षा से गुरू ही हैं। जिसी को परम गुरु, अपरम गुरु, आचार्य गुरु आदि

संज्ञा से बुलाया जाता है।

शंकाः—छटवें गुणस्थान में कितनो प्रकृत्तियों का बन्ध होता है ?

समाधानः—पांचवे गुणस्थान में ६७ प्रकृतियों का बन्ध होता था उनमें से प्रत्याख्यानावरण --क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चार व्युच्छिन्न प्रकृतियों को घटाने पर ६३ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

शंका—छटवें गुणस्थान मे उदय कितनी प्रकृतियों का होता है ?

समाधान---पांचवें गुणस्थान मे ८७ प्रकृतियों का उदय था उनमें से प्रत्याख्याना वरण, क्रोध, मान, माया लोभ, तिर्यंच गति, तिर्यंच आयु, उद्योत और नीच गोत्र इन आठ व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने पर ७९ प्रकृतियाँ रहीं। उनमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन दो प्रकृतियों के मिलाने से ८१ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका---छटचें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता हैं ?

समाधान---पांचवें गुणस्थान में १४७ प्रकृतियों की सत्ता कही हैं। उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति एक तिर्यंचआयु के घटाने पर १४६, प्रकृतियों की सत्ता रहती हैं। परन्तु

क्षायक सम्यक्दृष्टि के १३९ प्रकृतियों की सत्ता है।

शंका---अप्रमत्त गुणस्थान के कितने भेद हैं ?

समाधान---दो भेद हैं। एक स्वस्थान अप्रमत्तविरत (२) सातिशय अप्रमत्तविरत।

शंका---स्वस्थान अप्रमत्त विरत किसे कहते हैं ?

समाधान---जो असंख्यात वार छटे से सातवें में और सातवें से छटे गुणस्थान में आवे जावे उसको स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

शंका---सातिशय अप्रमत्त विरत किसे कहते हैं ?

समाधान---जो श्रेणी चढ़ने के सन्मुख हो उसे सातिशय अप्रमत्तविरत कहते हैं। यहां जीव अन्तर्मुहूर्त तक रह जाता है।

शंका—श्रेणी चढने का पात्र कौन है ?

समाधान---क्षायिक सम्यक्दृष्टि और द्वितियोपशम सम्यक्दृष्टि ही श्रेणी चढ़ते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाला तथा क्षयोपशम सम्यक्त्व वाला श्रेणी नहीं चढ़ सकता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़ कर क्षायोपशमिक सम्यक्दृष्टि हो कर प्रथम ही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का विसं-योजन करके दर्शन मोहिनी की तीन प्रकृतियों का उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यक्दृष्टि

हो जावे अथवा तीनों प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यक्दृष्टि हो जावे तब श्रेणी चढ़ने का पात्र होता है।

शंका—श्रेणी किसे कहते हैं ?

समाधानः—चारित्र मोहनीय कर्म की शेष २१ प्रकृतियों का क्रम से उपशम तथा क्षय किया जावे उसे श्रेणी कहते हैं।

शंका—श्रेणी के कितने भेद हैं ?

समाधान—दो भेद हैं। (१) एक उपशम श्रेणी (२) क्षपक श्रेणी

शंका—उपशम श्रेणी किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें चारित्र मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियों का उपशम किया जाय।

शंका—क्षपक श्रेणी किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें चारित्र मोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियों का क्षय किया जाय।

शंका---इन दोनों श्रेणियों में कौन कौन से जीव चढ़ते हैं ?

समाधान---क्षायक सम्यक् दृष्टि दोनों श्रेणी चढ़ता है। परन्तु द्वितियोपशम सम्यक् दृष्टि उपशम श्रेणी ही चढ़ता है। क्षपक श्रेणी नहीं चढता है।

शंका---उपशम श्रेणी के कौन २ से गुणस्थान हैं ?

समाधान---चार गुणस्थान हैं। आठवाँ, नववाँ, दसवाँ एवं ग्याहरवाँ।

शंका---क्षपक श्रेणी के कौन २ से गुणस्थान हैं?

समाधान---चार गुणस्थान हैं। आठवाँ, नवाँ, दसवाँ और बारहवाँ।

शंका---सातवें गुणस्थान में वन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान---छट्ठे गुणस्थान में जो ६३ प्रकृतियों का वन्ध कहा है उनमें से व्युच्छित्ति, अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति, अरति, शोक यह छः प्रकृति घटा देने पर शेष सत्तावन रहीं, उसमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन दो प्रकृतियों को मिलाने से ५९ प्रकृतियों का वन्ध होता है।

शंकाः---सातवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान---छठ्टे गुणस्थान में जो ८१ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से विच्छुत्ति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानगृद्धि इन प्रकृतियों के घटाने पर शेष ७६ प्रकृतियों रही, उनका उदय होता है।

शंक---सातवें गुणस्थान में सत्ता कितनी प्रकृतियों

की रहतो है ?

समाधान—छटवॉ गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी १४६ प्रकृतियों की सत्ता रहती है किन्तु क्षायिक सम्यक् दृष्टि के १३९ प्रकृतियों की सत्ता रहती है ?

शंका---- छठ्टे सातवें गुणस्थान में पॉच भाव में से कौन से भाव हैं।

समाधान----गति, लेश्या, तथा असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहन गुण, अगुरू लघु गुण और सूक्ष्मत्व गुण औदयिक भाव से अर्थात् सम्पूर्ण पणे विकारी परिणमन करते है। श्रद्धा गुण, उपशम, क्षयोपशम तथा क्षायिक भाव से अलग २ जीवों की अपेक्षा से परिण मन करता है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण, वीर्य गुण, तथा चारित्र गुण क्षयोपशम भाव से अर्थात् अंश में शुद्धता अंश में अशुद्धता रूप मिश्र परिणामन करते हैं। जीवत्व और भव्यत्व नाम के परिणामिक भाव शक्ति रूप हैं।

इति प्रमत्त अप्रमत्त गुण स्थान सम्पूर्णम्

आठवां अपूर्व करण गुणस्थान

जब आत्मा सातवॉ गुणस्थान में विशेष रूप से अपने में स्थिर होती है तब वह जीव पुण्य रूपी कुशील

भाव को ज्ञान रूपी अग्नि द्वारा काटना प्रारम्भ करते हैं। ऐसे गुणस्थान का नाम अपूर्व करण गुणस्थान है। पूर्व में कभी ऐसा निर्मल भाव हुवा नहीं है इस कारण इस गुणस्थान का नाम अपूर्व करण गुणस्थान है। इस गुणस्थान से आत्मा कर्म की अपेक्षा से क्षपक और उपशम श्रेणी माड़ता है। विशेपता इस बात की है कि इस गुणस्थान से आत्मा क्रमशः अपने भाव बढ़ाती ही जाती है। परन्तु गिरती नहीं है। यदि क्षपक रूप श्रेणी रूप चढ़ेगा तो नियम से मोक्ष सुन्दरी के साथ में सम्बन्ध कर लेता है। जैसे बड़े घर की बरात नियम से कन्या को लेके ही आती है बिना कन्या लिए वापिस नहीं आती।

शंका—इस गुणस्थान में न तो कर्म का क्षय होता है और न कर्म का उपशम फिर इस गुणस्थान वर्ती जीवों को क्षपक और उपशमक कैसे कहा जाता है?

समाधान—यहाँ भावी पर्याय में वर्तमान पर्याय का आरोप कर लेने से आठवें गुणस्थान में क्षपक और उपशमक की सिद्धी व्यवहार से हो जाती है।

शंका—पाँच प्रकार के भावों में से इस गुणस्थान में कौनसा भाव पाया जाता है?

समाधान—क्षपक के क्षायिक और उपशमक के

औपशमिक भाव पाया जाता है।

शंका—इस गुणस्थान में तो न कर्म का क्षय होता है और न उपशम ही होता है ऐसी अवस्था में यहाँ पर क्षायिक और औपशमिक भाव का सद्भाव कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि इस गुणस्थान में क्षायिक और औपशमिक भाव का सद्भाव उपचार से माना है।

शंकाः----उपचार आप किसे कहते हैं ?

समाधान----यथार्थ में जो नहीं हैं परन्तु उपचार से कथन करना, उसी का नाम उपचार हैं। [धवल ग्रन्थ पु० नं० १ पृष्ठ नं० १८१-१८२]।

शंका----अपूर्व करण गुणस्थान में जीव का मरण कब होता ?

समाधान- --अपूर्व करण के प्रथम समय से लेकर जब तक निद्रा और प्रचला इन प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति नहीं होती है। तब तक अपूर्व गुणस्थान वर्ती संयत का मरण नहीं होता है [धवल ग्रन्थ ४ पृष्ठ ३५२]

शंका----आठवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

समाधान----सातवें गुणस्थान में जो ५९ प्रकृतियों

का वन्ध कहा है, उनमें से व्युच्छिति एक देव आयु के घटाने पर ५८ प्रकृतियों का वन्ध होता है।

शंका----आठवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान----सातवें गुणस्थान में ७६ प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से सम्यक् प्रकृति, अर्धनाराच, किलक, असंप्राप्तासृपाटिका सहनन, इन चार प्रकृतियों के घटाने पर शेप ७२ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका----आठवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान----आठवें गुणस्थान में जो १४६ प्रकृतियों की सत्ता कही है। उनमें से अनतानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार को घटा कर द्वितियोपशम सम्यक् दृष्टि उपशम श्रेणी वाले के तो १४२ प्रकृति की सत्ता है। किन्तु क्षायिक सम्यक् दृष्टि उपशम वाले के दर्शन मोहिनी की तीन प्रकृति रहित १३९ प्रकृति की सत्ता रहती है। चपक श्रेणी वाले के सातवें गुणस्थान की व्युच्छिति अनन्तानुवन्धी क्रोध मान, माया, लोभ तथा दर्शन मोहिनी की तीन और एक देव आयु मिल कर आठ प्रकृति घटा कर, शेप १३८ प्रकृतियों की सत्ता

रहती है।

शंका---आठवें गुणस्थान में पाँच भावों में से यथार्थ में कितने भाव हैं ?

समाधान----गति, लेश्या, तथा आसिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्यावाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण, तथा सूक्ष्मत्व गुण, औदयिक भाव से अर्थात् सम्पूर्ण रीति से विकार रूप परिणमन करते हैं। श्रद्धा गुण की अपेक्षा से उपशम तथा क्षायिक भाव नाना जीवों की अपेक्षा से हैं। ज्ञान गुण, दर्शन, गुण, चारित्र गुण. और वीर्य गुण, क्षयोपशम भाव से अर्थात् अंश में शुद्धाशुद्ध सहित मिश्र भाव से परिणमन करते हैं। जीवत्व तथा भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं।

इति अष्टम गुणस्थान सम्पूर्णम् :

नववाँ अनिवृत्ति करण गुणस्थान

इस गुणस्थान में अन्तरमूर्त मात्र का काल है जिसमें सब जीवों के परिणाम एक समान पाये जाते हैं। यद्यपि शरीर का आकार वर्णादि वाह्य रूप से, ज्ञानोपयोग आदि अन्तरंग रूप से परस्पर भेद को प्राप्त होता है तो भी परिणाम एक समान हैं। समय समय में प्रत्येक

उत्तरोत्तर अनन्त गुण विशुद्धि से बढ़ते हुये एक से ही परिणाम पाये जाते हैं। तथा ये परिणाम अत्यन्त निर्मल ध्यान रूप अग्नि की शिखाओं से कर्म वन को भस्म करने वाले होते हैं। (धवल ग्रन्थ नं० १ पृष्ठ १८७)

अनिवृत्ति करण के काल में संख्यात भाग शेष रहनेपर स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, नरकगति, तिर्यंच गति एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रिय जाति,(द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय) नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, और साधारण इन १६ प्रकृतियों का क्षय करता है। फिर अन्तर्मुहूर्त व्यतीत कर प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन आठ प्रकृतियों को एक साथ क्षय करता है। यह सत् कर्म प्राभृत का उपदेश है। किन्तु कषाय प्राभृत का उपदेश तो इस प्रकार है कि पहले ८ कषायों का क्षय हो जाने पर पीछे से एक अन्तर्मुहूर्त में १६ कर्म प्रकृतियों का क्षय होता है। ये दोनों ही उपदेश सत्य हैं ऐसा कहना घटित नहीं होता है। क्योंकि उनका ऐसा कहना सूत्रों से विरुद्ध पड़ता है तथा दोनों वचन प्रमाण हैं, यह कहना भी घटित नहीं होता है। क्योंकि एक प्रमाण को दूसरे प्रमाण का विरोध नहीं चाहिये यह न्याय है। [धवल

ग्रन्थ १ पृष्ठ० २१७]

शंका—क्षपक श्रेणी में बन्ध द्रव्य से उदय और संक्रमण द्रव्य की संख्या कितनी है ?

समाधान—बन्ध से उदय अधिक है। और उदय से संक्रमण अधिक होता है। इनकी अधिकता प्रदेशाग्रसे असंख्यात गुणित श्रेणी रूप जाननी चाहिये। अर्थात् द्रव्य बन्ध से उदय द्रव्य असंख्यात गुणा है। और उदय द्रव्य से संक्रमण द्रव्य असंख्यात गुणा है। (धवल ग्रन्थ ६ पृष्ठ ३५९)।

शंका—क्षपक श्रेणी में संक्रमण किस प्रकार होता है ?

समाधान—स्त्री वेद और नपुसंक वेद को पुरुष वेद में तथा पुरुष वेद और हास्यादि छह नो कषाय इन सात नोकषाय को संज्वलन क्रोध में नियम से स्थापित करता है। [धवल ग्रन्थ नं० ६ पृष्ठ० ३५९]

उपशम श्रेणी वाला २६ प्रकृतियों का उपशम करता है। और क्षपक श्रेणी वाला २६ प्रकृतियों को क्षय कर दशवें गुणस्थान में जाता है।

शंका----नववें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

समाधान---आठवें गुणस्थान में जो ५८ प्रकृतियों

का बन्ध कहा है उनमें से व्युच्छिति निद्रा, प्रचला, तीर्थ कर, निर्माण, प्रशस्त विहायो गति, पंचेन्द्रिय जाति, तेजसशरीर, कार्माण शरीर आहारक शरीर, आहारक अंगोपाँग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यापूर्वी, उच्छ्वास, त्रस, बादर, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, अगुरू लघु, उपघात, परघात, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा और भय इन ३६ प्रकृतियों को घटाने पर शेष २२ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

शंका----नववें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है।

समाधान----आठवें गुणस्थान में जो ७२ प्रकृतियों का उदय होता है, उनमें से व्युच्छिति, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन छः प्रकृतियों को घटाने पर शेष ६६ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका---नववें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है ?

समाधान----आठवें गुणस्थान की तरह इस गुण-स्थान में भी उपशम श्रेणी वाले उपशम सम्यक्-दृष्टि के १४२, प्रकृतियों की क्षायिक सम्यक्-दृष्टि के १३९ प्रकृ-

तियों की सत्ता रहती है। तथा क्षपक श्रेणी वाले के १३८ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका----नववें गुणस्थान में पाँच भावों में से यथार्थ में कौन से २ भाव हैं ?

समाधान----गति, लेश्या, तथा असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण, और सूक्ष्मत्व गुण, औदयिक भाव से अर्थात् सम्पूर्ण पणे विकारी परिणमन करते हैं। श्रद्धा नाम का गुण उपशम भाव से तथा क्षायिक भाव से अनेक जीवों की अपेक्षा से परिणमन करता है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण, वीर्य गुण, और चारित्र गुण क्षयोपशम भाव से परिणमन करते हैं। जीवत्व और भव्यत्व नाम के परिणामिक भाव शक्ति रूप हैं।

इति अनिवृति करण गुणस्थान सम्पूर्णम्

दसवाँ सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान

इस गुणस्थान में मात्र सूक्ष्म लोभ रूप परिणाम हैं। इस परिणाम से मोहिनी कर्म का बन्ध नहीं पड़ता है। परन्तु तीन घातिया कर्म सहित ६ कर्मों का बन्ध पड़ता है। उपशम श्रेणी वाला जीव सूक्ष्म लोभ को

उपशमा कर ग्यारहवें गुणस्थान में जाता है। और क्षपक श्रेणी वाला जीव सूक्ष्म लोभ का नाश कर सीधा बारहवें गुणस्थान में जाना है। इस गुणस्थान का काल भी अन्तर्मूहूर्त मात्र है।

शंका---दशवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है?

समाधान---नववें गुणस्थान में २२ प्रकृतियों का बन्ध होता है, उनमें से व्युच्छित्ति, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इन पाँच प्रकृतियों के घटाने पर शेष १७ प्रकृतियों का बन्ध होता है।

शंक---दशवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

समाधान---नववें गुणस्थान में जो ६६ प्रकृतियों का उदय होता है। उनमें से व्युच्छित्ति स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसंकवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, इन छः प्रकृतियों के घटाने पर शेष ६० प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका----दशवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान----नववें गुणस्थान की तरह उपशम श्रेणी वाले, उपशम सम्यक् दृष्टि के १४२ प्रकृतियों की तथा क्षायिक सम्यक् दृष्टि के १३९ प्रकृतियों की सत्ता रहती

है। क्षपक श्रेणी वाले के नववें गुणस्थान में जो १३८ प्रकृतियों की सत्ता है, उनमें से व्युच्छिति, तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय तीन, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यान गृद्धि, उद्योत, आताप एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर, अप्रत्याख्यानावरणी चार, प्रत्याख्यानावरणी चार, नोकषाय नव, संज्वलन क्रोध, मान, माया, नरकगति, नरकगत्यानपूर्वी इन ३६ प्रकृतियों को घटाने पर शेष १०२ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका---दशवें गुणस्थान में पाँच भावों में से यथार्थ में कौन से भाव हैं ?

समाधान---गति, लेश्या, असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण, और सूक्ष्मत्व गुण औदयिक भाव से अर्थात् सम्पूर्ण पणे विकारी परिणमन करते हैं। श्रद्धा गुण, उपशम भाव से तथा क्षायिक भाव से अनेक जीवों की अपेक्षा से परिणमन करता है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण, वीर्य गुण, तथा चारित्र गुण, क्षयोपशम भाव से परिणामन करते हैं। जीवत्व भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं।

इति सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान समाप्त।

ग्याहरवाँ उपशान्त मोह गुणस्थान

इस गुणस्थान में जीव वीतराग दशा को प्राप्त हो जाता है। परन्तु यहाँ से नियम से गिर जाता है।

शंका---अवस्थित परिणामवाला उपशान्त कषाय वीतराग, मोह में कैसे गिरता है ?

समाधान—स्वाभाव से गिरता है। अर्थात् पारिणामिक भाव से गिरता है।

उपशांत कषाय का प्रतिपात दो प्रकार का है। एक भव क्षय निबन्धन और दूसरा उपशमन काल क्षय निबन्धन। इनमें भव क्षय से प्रतिपात को प्राप्त हुए जीव के देवों में उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही बन्ध, उदीरणा, संक्रमण आदि रूप, सब कारण निज स्वरूप प्रवृत्त हो जाते हैं, जो कर्म उदीरणा को प्राप्त हैं वे उदया वली में प्रवेशित हैं। जो उदीरणा को प्राप्त नहीं हैं वे भी अपकर्षण करके उदयावली के बाहर गौपुच्छा कर श्रेणी रूप से निक्षिप्त होते हैं (धवल ग्रन्थ नं० ६ पृष्ठ ३१७)

शंका—उपशान्त मोह से गिरने वाला जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है या नहीं ?

समाधान—द्वितियोपशम सम्यक्त्व के काल के भीतर असंयम को भी प्राप्त हो सकता है, संयमासंयम को भी

प्राप्त हो सकता है और छः आवली शेष रहने पर सासादन को भी प्राप्त हो सकता है। परन्तु सासादन को प्राप्त हो कर, यदि मरता है, तो नरक गति, तिर्यंच गति और मनुष्य गति, को प्राप्त करने के लिए समर्थ नहीं होता है नियम से ही देव गति को प्राप्त करता है। यह कषाय प्राभृत चूर्णी सूत्र (यति वृषभाचार्य कृत) का अभिप्राय है, किन्तु भगवान भूतबलि के मतानुसार उपशम श्रेणी से उतरता हुआ सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं करता है। निश्चयतः नरक आयु, तिर्यंच आयु और मनुष्य आयु में से पूर्व में बाँधी गई एक भी आयु से कषायों के उपशमन के लिए समर्थ नहीं होता। इस कारण से नरक, तिर्यंच और मनुष्य गति को प्राप्त नहीं होता है। (धवल ग्र० नं० ६ पृष्ठ ३२१)

शंका— ग्यारहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

समाधान—दसवें गुणस्थान में जो १७ प्रकृतियों का बन्ध होता था, उनमें से व्युच्छित्ति, ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण ४, अन्तराय की ५, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र इन सोलह प्रकृतियों के घटाने पर एक मात्र साता वेदनीय का बन्ध होता है।

शंका—ग्यारहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृ-

तियों का होता है?

समाधान—दशवें गुणस्थान में जो साठ प्रकृतियों को उदय होता है, उनमें से संज्वलन लोभ प्रकृति को घटाने पर शेष ५९ प्रकृतियों का उदय रहता है।

शंका—ग्याहरवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधान—नववें और दशवें गुणस्थान की तरह द्वितियोंपशम सम्यक्दृष्टि के १४२ और क्षायिक सम्यक् के १३९ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका—ग्याहरवें गुणस्थान में पाँच भावों में से यथार्थ में कौन से भाव हैं?

समाधान—गति, लेश्या, और असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं, अर्थात् प्रदेशत्त्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरु-लघु गुण, और सूक्ष्मत्त्व गुण, औदयिक भाव से परिणमन करते हैं। श्रद्धा गुण के उपशम भाव तथा क्षायिक भाव नाना जीवों की अपेक्षा से हैं। चारित्र गुण उपशम भाव से परिणमन करता है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण और वीर्य गुण, क्षयोपशम भाव से परिणमन करते हैं। जीवत्व और भव्यत्त्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं। जब आत्मा ग्यारहवें गुणस्थान से गिरती है, तब चारित्र

गुण उपशम भाव में न रह कर, पारिणामिक भाव से परिणमन करता है। इति उपशांत मोह गुणस्थान सम्पूर्णम्।

बारहवाँ क्षीण मोह गुणस्थान

इस गुणस्थान में आत्मा सम्पूर्ण वीतराग दशा को प्राप्त होती है। इस गुणस्थान से आत्मा कभी गिरती नही है। अतैव आत्मा यहाँ अन्तर्मूहूर्त मात्र स्थिति कर नियम से तेरहवें गुणस्थान में जाती है। इस गुणस्थान में वेदनीय कर्म, नाम कर्म और गोत्र कर्म की स्थिति सहज ही पल्योपम के असंख्यात भाग में हो जाती है। इस गुणस्थान के अन्त में सप्त धातु रूप औदारिक शरीर है, जिसमें असंख्यात त्रस निगोद है, उस निगोद जीव की आयु का अन्त आप से आप आने से वही औदारिक शरीर, सप्त धातु तथा त्रस निगोद रहित परम औदारिक स्फटिक मणि रूप हो जाता है। इस गुणस्थान के अन्त में ज्ञानावरण कर्म, दर्शनावरण कर्म और अन्तराय कर्म से रहित होकर आत्मा तेरहवें गुणस्थान में आरूढ़ होती है।

शंका:—बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का का बन्ध होता है?

समाधानः—एक मात्र साता वेदनीय का ही बन्ध होता है।

शंकाः—बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

समाधानः—ग्यारहवें गुणस्थान में जो ५९ प्रकृतियों का उदय होता, उनमें से व्युच्छिति वज्रनाराच और नाराच दो प्रकृतियों के घटाने पर ५७ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंकाः—बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है?

समाधानः—दशवें गुणस्थान में क्षपक श्रेणी वाले की अपेक्षा १०२ प्रकृतियों की सत्ता है, उनमें से व्युच्छिति संज्वलन लोभ, एक प्रकृति के घटाने पर १०१ प्रकृतियों की सत्ता है।

शंकाः—बारहवें गुणस्थान में पाँचों भावों में से यथार्थ में कौन से भाव हैं?

समाधान—गति, लेश्या, और असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्यावाध गुण, अगुरूलघु गुण, और सूक्ष्मत्व गुण, औदयिक भाव से परिणमन करते हैं। श्रद्धा गुण, तथा चारित्र गुण, क्षायिक भाव से परिणमन

करते हैं। ज्ञान गुण, दर्शन गुण और वीर्य गुण, क्षयोप शम भाव से परिणमन करते हैं। जीवत्व तथा भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप है। इस गुणस्थान में औपशमिक भाव नहीं है।

इति क्षीण मोह गुणस्थान सम्पूर्णम्

तेरहवाँ सयोग केवली गुणस्थान

इस गुणस्थान के पहले समय में आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य की प्राप्ति होती है। इस गुणस्थान में क्रिया गुण, योग गुण अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण तथा सूक्ष्मत्व गुण विकार रूप परिणामन करते हैं। तीर्थंकर केवली भगवान को दोवचन योग और एक औदरिक काय योग हैं। दो वचन योग में एक सत्य वचन है और दूसरा अनुभय वचन है। इन दोनों वचन योग से भगवान के सम्पूर्ण प्रदेशों से समय समय में द्वादशांग रूप वाणी खिरती है। लोक में शब्द असंख्यात हैं। ऐसा कोई शब्द बाकी नहीं रहता है जो भगवान की वाणी में न आता हो। इस कारण से भगवान की वाणी को अनक्षरी वाणी कही जाती है।

केवली भगवान की वाणी को ध्वनि कहा गया है, इसका इतना ही अर्थ है कि भगवान् की वाणी अनेक

भाषाओं के रूप में खिरती है, तब उस वाणी को कौनसी भाषा कहोगे यह कहना कठिन है, इस कारण से केवली भगवान की वाणी को ध्वनि कहा जाता है, कहा भी है कि "दशअष्ट महा भाषा समेत लघु भाषा सात शतक सुचेत" इससे भी ज्ञात होता है कि भगवान की वाणी अठारह बड़ी भाषाओं और सात सौ लघु भाषाओं सहित खिरती है।

आठ कर्मों में से चार घातिया कर्म एक ज्ञानावरण, दूसरा दर्शनावरण, तीसरा मोहिनीय चौथा अन्तराय कर्म का अत्यन्त नाश हो गया है। कर्म की १४८ उत्तर प्रकृति हैं जिनमें से ६३ प्रकृतियों का भगवान की आत्मा के प्रदेश से अभाव हो गया है। प्रकृति इस प्रकार हैं। ज्ञानावरण की ५, दर्शना वरण की ९, मोहिनीय की २८, अन्तराय की ५, आयु की तीन [(१) देव आयु (२) तिर्यंच आयु (३) नरक आयु] और नाम कर्म की १३ प्रकृतियों [(१) नरक गति (२) तिर्यंच गति (३) नरक गत्यानुपूर्वी (४) तिर्यंच गत्यानुपूर्वी (५) एकेन्द्रिय जाति (६) द्विन्द्रिय जाति (७) त्रीन्द्रिय जाति (८) चतुरिन्द्रिय जाति (९) उद्योत (१०) आताप (११) साधारण (१२) सूक्ष्म (१३) स्थावर] इन सब को मिला कर कुल ६३ प्रकृतियों का नाश किया है। तो भी भगवान की आत्मा

के साथ एक क्षेत्र में ८५ प्रकृतियों का सम्बन्ध है। केवली भगवान १८ दोष रहित हैं। वे दोष इस प्रकार हैं। (१) क्षुधा, (२) तृषा, (३) भय (४) क्रोध, (५) राग (६) मोह (७) चिंता (८) जरा (९) रोग (१०) मृत्यु (११) पसीना (१२) खेद (१३) मद (१४) रति (१५) आश्चर्य (१६) निद्रा (१७) जन्म (१८) आकुलता केवली भगवान को दश प्राण में से चार प्राण हैं। एक वचन प्राण (२) काय प्राण (३) श्वासोच्छ्वास प्राण तथा (४) आयु प्राण। इन चार प्राणों का उपादान कर्ता पुदगल द्रव्य ही है। तो भी संयोग की अपेक्षा से उसको अजीव तत्व कहा जाता है। केवली भगवान में पाँच इन्द्रिय तथा द्रव्य मन मिलकर ६ प्राण का अभाव है। क्योंकि आप में क्षायिक ज्ञान की प्राप्त हो गई है। जब कि ये ६ प्राण क्षयोपशमिक ज्ञानियों के ही होते हैं। क्योंकि क्षयोपशम ज्ञान पराधीन है। जो इन ६ प्राणों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करता है, परन्तु आप इन ६ प्राणों की सहायता बिना अपने सम्पूर्ण प्रदेशों से लोकालोक के समस्त पदार्थों की त्रिकाली पर्याय सहित वर्तमान में देखते हैं। अर्थात् आपके ज्ञान में झलकती हैं। इसी कारण आप में छः प्राण का अभाव है।

केवली भगवान को भाव उदीरणा नहीं होती है।

क्योंकि भाव उदीरणा क्षयोपशम भाव में बुद्धि पूर्वक रागादिक का नाम है। केवली परमात्मा को रागादिक तथा क्षयोपशम भाव नहीं होते हैं तो भी केवली परमात्मा को द्रव्य उदीरणा होती है। ऐसा जो आगम वाक्य है, उसका इतना ही अर्थ है कि जिस केवली परमात्मा के पास में आयु कर्म से वेदनीय, नाम, गोत्र कर्म की स्थिति विशेष है। ऐसा केवली परमात्मा समुद्घात करके उन कर्म परमाणुओं को अलग २ क्षेत्र में खिरा देते हैं। इस कारण से केवली परमात्मा के द्रव्य उदीरणा मानी गई है। यह द्रव्य उदीरणा आठ समय के भीतर में ही हो जाती है, छद्मस्थ जीवों को ज्ञान गोचर नहीं होती है।

भगवान का शरीर अभी समय-समय में परम औदारिक परमाणु ग्रहण करता है। इस कारण से भगवान को आहारक कहा जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि भगवान कवलाआहार लेते हैं। छठवें गुणस्थान तक ही आहार संज्ञा मानी गई है। उसके बाद आहार संज्ञा ही नहीं है। तब आहार की उदीरणा कैसे कर सकते हैं? जैसे मैथुन संज्ञा नववें गुणस्थान तक ही मानी है, जब मैथुन की उदीरणा पाँचवें गुणस्थान की ब्रह्मचर्य प्रतिमा में ही नहीं होती है तब नववें गुणस्थान के बाद मैथुन

की उदीरणा मानना यह न्याय संगत नहीं है। उसी प्रकार केवली भगवान को आहार संज्ञा ही नहीं है तब वहाँ आहार की उदीरणा मानना न्याय संगत नहीं है।

शंका—केवली परमात्मा को असाता कर्म का उदय है, तो भी केवली परमात्मा कवलाहार नहीं लेते हैं। ऐसा क्यों कहते हो ?

समाधान—केवली परमात्मा को ही केवल ज्ञान है। वह लोकालोक देखते हैं। उस लोकालोक में पंचेन्द्रिय के मृतक शरीर को भी देखते हैं। ऐसी हालत में केवली भगवान अन्तराय का पालन करेगा या आहार करेगा। मुनिराज भी पंचेन्द्रिय का मृतक शरीर देखने से आहार में अन्तराय मानते हैं। तब क्या केवली भगवान मुनि पर्याय से हीन अवस्था वाले हैं ? यह सब विचार ने की बात है। अनन्त सुख के धनी को क्षुधा लगती है, तब केवली का अनन्त सुख कहाँ रहा। अनन्त सुख के धनी को रोग हो जाता है, रोग में औषधि लेते हैं, तब अनन्त सुख कहाँ रहा। इस मान्यता वाले जीवों ने केवल ज्ञानी को पहचाना ही नहीं है। जिस जीव को देव के स्वरूप का ज्ञान नहीं है, वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है।

शका—केवली के ११ परीषह कहीं गई हैं। किस प्रकार हैं ?

समाधान—२२ परीपह को जीतना पुन्य भाव है, जो चारित्र गुण की मन्द कपाय रूप अवस्था है। जब केवली भगवान के पुन्य भाव भी नहीं है और उनकी चारित्र गुण की पर्याय निराकुल रूप हो गई। उस केवली के परिपह कहना यह उपचार का कथन है। परीपह में कौन से कर्म का उदय निमित्त पड़ता है? इसी से तत्त्वार्थ सूत्र के नववें अध्याय में लिखा कि।

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहान्तराययोर दर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्र मोहे नाग्नयारति स्त्री निषद्या क्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥

यथार्थ में परीषह जीतना प्रशस्त राग की प्रर्याय है। उसमें कौनसे कौनसे कर्म का निमित्त है। यह मात्र दिखाने के लिये कहा गया है कि केवली के वेदनीय कर्म का सद्भाव के कारण की अपेक्षा से "एकादशाजिने" ॥११॥ सूत्र कहा गया है। परन्तु जहाँ राग ही नहीं है, वहाँ बाह्य निमित्त कार्यकारी नही हो सकता।

शंकाः—केवली परमात्मा को साता तथा आसाता वेदनीय कर्म का उदय है, तो उस कर्म ने केवली परमात्मा को कौनसा फल दिया?

समाधानः—वेदनीय कर्म का कार्य बाह्य सामिग्री

का संयोग वियोग कराना ही है। परन्तु यदि जीव में मोह विद्यमान हो तो उस सामिग्री में रागद्वेष कर लेता है। परन्तु केवली को रागादिक भाव नहीं होने से मात्र वेदनीय कर्म बाह्य संयोग मिला देता है। जैसे आपको हजार रुपयों का लाभ हुआ। वह किसका फल है ? तब आपको कहना होगा कि वह साता वेदनीय का फल है। उन रुपयों में दस रुपये नकली निकले यह किस कर्म का फल है ? तब आपको कहना होगा कि वह असाता कर्म का फल है। इसी प्रकार साता वेदनीय के उदय में तीर्थंकर केवली को समवशरण की विभूति मिलती है। जिसमें मणि रत्न के कंगूरे कोटादि हैं। परन्तु असाता कर्म के उदय में कहीं कहीं मणि रत्न के ऐवज में मात्र रत्न लगा होगा यही असाता कर्म का फल है। असाता कर्म के उदय में केवली परमात्मा कवलाहार करे यह कहना मात्र अज्ञान की ही महिमा है। आपको भी अभी असाता कर्म का उदय है आप कवलाहार क्यों नहीं लेते हो ? इससे सिद्ध हुआ कि असाता कर्म के उदय में ही क्षुधा लगती है, आहार लिया जावे सो बात नहीं, परन्तु आसाता कर्म की उदीरणा से ही आहार लिया जाता है। आहार छट्ठे गुणस्थान के तीव्र उदय में ही लिया जाता है। और वह क्षयोपशम भाव में ही लिया जाता है। परन्तु औदयिक

भाव में तथा क्षायिक भाव में आहार नहीं लिया जाता है। केवली परमात्मा को क्षयोपशम भाव नहीं होता है, तब वहाँ उदीरणा कैसे करेंगे। औदयिक भाव में भी आहार लिया नहीं जाता है। क्योंकि औदयकि भाव समय समय में हो रहा है। तब भी हम समय समय में आहार नहीं लेते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि केवली परमात्मा कवलाहार नहीं लेते हैं।

इस विषय में धवल ग्रन्थ नं० १२ पृष्ठ २४ पर शंका भी की गई है कि
शंकाः—असाता वेदनीय का वेदन करने वाले तथा क्षुधा तृषा आदि ग्यारह परीषहों द्वारा बाधा को प्राप्त हुए ऐसे सयोगि केवली भगवान के भोजन का ग्रहण कैसे नहीं होगा ?

समाधानः—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जो भोजन पान में उत्पन्न हुई इच्छा से मोह युक्त है तथा मरण के भयसे जो भोजन करता है, अतएव परीषहोंसे जो पराजित हुआ है, ऐसे जीव के केवली होने का विरोध है। संक्लेश के साथ अविनाभाव रखने वाली क्षुधा से जलने वाले के भी केवली पना बन जाता है, इस प्रकार यह दोष समान ही है, ऐसा भी समाधान नहीं करना चाहिये, क्योंकि, अपने सहायक घातिया कर्मों का

अभाव हो जाने से अशक्तता को प्राप्त हुए असातावेदनीय के उदय से क्षुधा व तृषा की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

शंकाः—बिना फल दिये ही प्रति समय निर्जीर्ण होनेवाले परमाणु समूह की उदय संज्ञा कैसे बन सकती है?

समाधानः—नहीं, क्योंकि, जीव व कर्म के विवेक मात्र फल को देख कर उदय को फल रूप से स्वीकार किया गया है।

शंकाः—यदि ऐसा है तो असाता वेदनीय के उदय काल में साता वेदनीय का उदय नहीं होता, केवल असाता वेदनीय का ही उदय रहता ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि अपने फल को नही उत्पन्न करने की अपेक्षा दोनों में ही समानता पायी जाती है?

समाधानः—नहीं, क्योंकि, तब असाता वेदनीय के परमाणुओं के समान साता वेदनीय के परमाणुओं की अपने रूप से निर्जरा नहीं होती, किन्तु विनाश होने की अवस्था में असाता रूप से परिणाम कर उनका विनाश होता है, यह देख कर साता वेदनीय का उदय नहीं है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु असाता वेदनीय का यह क्रम नहीं है, क्योंकि, तब असाता के परमाणुओं की अपने रूप से ही निर्जरा पायी जाती है। इस कारण दुःख रूप

फल के अभाव में भी असाता वेदनीय का उदय मानना युक्ति युक्त है, यह सिद्ध होता है।

तीर्थंकर केवली के महान पुण्य का उदय है। इस कारण से समवसरण की विभूति उन्हें मिल जाती है, जब सामान्य केवली के महान् पुण्य का उदय नहीं है, तब गन्ध कुटी बन जाती है। पुण्य में अन्तर होते हुए भी सब केवली परत्मात्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य में कोई अन्तर नहीं है। केवली भगवान का जब निर्माण का दिन निकट आता है तब भगवान का योग निरोध स्वयं होता है।

शंका---योग कितने प्रकार हैं ?

समाधानः—योग तीन प्रकार के हैं। (१) मनयोग (२) वचन योग (३) काय योग हैं ?

शंकाः—मनयोग किसे कहते ?

समाधानः—धवल ग्रन्थ नं० १० पृष्ठ ४३७-४३८ में लिखा है कि—बाह्य पदार्थ के चिन्तन में प्रवृत हुए मनसे उत्पन्न जीव प्रदेशों के परस्पन्दन को मन योग कहते हैं।

शंकाः—वचन योग किसे कहते हैं ?

समाधानः—भाषा वर्गणा के स्कन्धों की भाषा स्वरूप से परिणमाने वाले व्यक्ति के जीव प्रदेशों का परस्पन्दन

होता है, वह वचन योग है।

शंका—काय योग किसे कहते हैं?

समाधानः—वात, पित्त व कफ आदि के द्वारा उत्पन्न परिश्रम से जो जीव प्रदेशों का परस्पन्दन होता है, वह काय योग कहा जाता है।

शंका—केवली के योग निरोध किस प्रकार से होता है?

समाधान---- स्थिति काण्डक का और अनुभाग काण्डक का उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्त है। यहाँ अन्तर्मुहूर्त जाकर वादर काय योग द्वारा वादर मनयोग का निरोध करते हैं। पश्चात अन्तर्मुहूर्त में वादर काय योग द्वारा वादर वचन योग का निरोध करते हैं। पश्चात अन्तर्मूहूर्त में वादर काय योग द्वारा वादर उच्छ्वास-निच्छ्वास का निरोध करते हैं। पश्चात वादर काय योग द्वारा वादर काय योग का निरोध करते हैं। पश्चात अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काय योग द्वारा सूक्ष्म मन योग का निरोध करते हैं। पश्चास अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्म काय योग द्वारा सूक्ष्म वचन योग का निरोध होता है। पश्चात अन्तर्मुहूर्त में सूक्ष्म काय योग द्वारा सूक्ष्म उच्छ्वास का निरोध करते है। पश्चात अन्तमुहूर्त मे सूक्ष्म काय योग द्वारा सूक्ष्म

काय योग का निरोध करते हैं। धवल ग्रन्थ नं० १० पृष्ठ ३२१।

शंका---केवली को चिन्तवन तो होता ही नहीं है तब वहाँ मनयोग कहना बनता ही नहीं है ?

समाधान---केवली के द्रव्य मन के परमाणु हैं जिससे मन योग किया, ऐसा कहा जाता है।

शंका----यदि मन के परमाणु हैं तब मनयोग कहा जाता है, तो मन तथा इन्द्रियों के सद्भाव में मन तथा इन्द्रिय प्राण केवली को कहनें में क्या बाधा है ?

शमाधान----आपका कहना सत्य है। परन्तु यहाँ उपचार से मनयोग कहा जाता हैं। यदि उपचार न माना जावे तो मन योग का जो लक्षण बनाया है, वह सदोष हो जाता है।

जब भगवान का योग निरोध होता है अर्थात् वाणी खिरना बन्द हो जाता है, विहार बन्द हो जाता है तब सर्वसाधारण जनता को मालूम हो जाता है कि भगवान का निर्वाण दिन निकट में ही आने वाला है। तेरहवें गुण-स्थान के अन्त में भगवान के शरीर के परमाणु आपसे आप कपूर की तरह विलय हो जाते हैं, तब सयोग केवली का काल पूर्ण होकर आत्मा अयोग केवली गुणस्थान में आरूढ़ हो जाता हैं। जहाँ कार्माण शरीर

का भी उदय नहीं रहता है।

शंकाः—सयोग जिन के कितने प्राण होते हैं ?

समाधानः—सयोगी जिनके पाँच भावेन्द्रियों और भाव मन नहीं रहते हैं। अतः इन छः के बिना चार प्राण होते हैं। तथा समुद्घात की अपर्याप्त अवस्था में आयु और काय यह दो ही प्राण पाये जाते हैं, परन्तु कितने ही आचार्य द्रव्येन्द्रिय की पूर्णतया की अपेक्षा दश प्राण कहते हैं। परन्तु उनका ऐसा कहना घटित नहीं होता है क्योंकि सयोगी जिन के भावेन्द्रियाँ नहीं पाई जाती हैं। पाँचों इन्द्रियाँवरण कर्मों के क्षयोपशम को भावेन्द्रिय कहते हैं। परन्तु जिन का आवरण कर्म समूल नष्ट हो गया है, उनके वह क्षयोपशम नहीं होता है और यदि प्राणों में द्रव्येन्द्रिय का ही ग्रहण किया जावे तो संज्ञी जीवों के अपार्याप्त काल में सात प्राणों के स्थान पर कुल दो ही प्राण कहे जायेगे। क्योंकि उनके द्रव्येन्द्रियों का अभाव होता है। अतः यह सिद्ध हुवा कि सयोगी जिन के चार अथवा दो प्राण होते हैं (धवल ग्रन्थ नं० २ पृष्ठ ४४४)

शंका—जिसका आरम्भ किया हुआ शरीर अपूर्ण है, उसे अपर्याप्त कहते है, परन्तु केवली की सयोगी अवस्था में शरीर का आरम्भ तो होता नहीं। अतः सयोगी

केवली के अपर्याप्त पना कैसे बन सकता है ?

समाधान---कपाट आदि समुद्घात अवस्था में सयोगी छः पर्याप्ति रूप शक्ति से रहित होता है अतः उन्हें अपर्याप्त कहा गया है।

शंका—समुद्घात केवली अपर्याप्त कैसे हैं ?

समाधान—उन्हें पर्याप्त तो माना नहीं जाता क्यों-कि औदारिक मिश्र काय योग अपर्याप्तकों के होता है, इस सूत्र से उनका अपर्याप्त पना सिद्ध है। इसलिये वे अपर्याप्त कहे गये हैं। (धवल ग्रन्थ नं० २ पृष्ठ ४४१)

शंका— केवलियों के समुद्घात सहेतुक होता है या निरहेतुक ? निरहेतुक होता है यह दूसरा विकल्प तो बन नहीं सकता। क्योंकि ऐसा मानने पर सभी केवलियों को समुद्घात करने के अनन्तर ही मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग प्राप्त होगा। यदि यह कहा जावे कि सभी केवली समुद्घात पूर्वक ही मोक्ष जाते हैं, ऐसा मान लिया जावे, इनमें क्या हानि है ? यह भी कहना ठीक नहीं है क्यों कि ऐसा मानने पर लोक पूर्ण समुद्घात करने वाले केवलियों की वर्ष प्रथक्त्व के अनन्तर २० संख्या होती है। यह नियम नहीं बन सकता है ? केवलियों का समुद्घात सहेतुक होता है। यह प्रथम पक्ष भी नहीं बन सकता है क्योंकि केवली में समुद्घात का कोई हेतु नहीं

पाया जाता है। यदि यह कहा जावे कि तीन अघातिया कर्मों की स्थिति से आयु कर्म की स्थिति के असमानता ही समुद्घात का कारण है, सो भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि क्षीण मोह गुणस्थान की चरम अवस्था में सम्पूर्ण कर्म समान नहीं होते हैं। इसलिए सभी केवलियों के समुद्घात का प्रसंग आ जायगा ?

समाधान—यति वृषभाचार्य के मतानुसार क्षीण कषाय गुणस्थान के चरम समय में सम्पूर्ण अघातिया कर्मों की स्थिति समान नहीं होने से सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। परन्तु जिन आचार्यों के मतानुसार लोक पूर्ण समुद्घात करने वाले केवलियों की २० संख्या का नियम है, उनके मतानुसार कितने ही केवली समुद्घात करते हैं और कितने ही नहीं करते।

शंक—कौनसे केवली समुद्घात नहीं करते हैं ?

समाधान—जिनकी संसार व्यक्ति अर्थात् ससार में रहने का काल वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति के समान है, वे समुद्घात नहीं करते हैं। शेष केवली करते हैं।

शंका—अनिवृत्ति आदि परिणामों के समान रहने पर संसार, व्यक्ति, स्थिति, और शेष तीन कर्मों की

स्थिति में विषमता क्यों रहती है।

समाधान—संसार की व्यक्ति, कर्म स्थिति के घात के कारण भूत अनिवृत्ति रूप परिणामों के समान रहने पर संसार को उसके अर्थात तीन कर्म की स्थिति के समान मान लेने में विरोध आता है। कहा है कि—

५, इन १६ प्रकृतियों के घटाने पर शेष ४१ प्रकृतियाँ रहीं। उनमें तीर्थंकर की अपेक्षा से एक तीर्थंकर प्रकृति मिलाने से ४२ प्रकृतियों का उदय होता है।

शंका----तेरहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

समाधान----बारहवें गुणस्थान में जो १०१ प्रकृतियों की सत्ता है, उनमें से व्युच्छित्ति, ज्ञानावरण की ५, दर्शना वरण की ४, निन्द्रा, प्रचला, और अन्तराय की ५ इन १६ प्रकृतियों के घटाने पर शेष ८५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

शंका—तेरहवें गुण स्थान में पाँच प्रकार के भाव में से कौन से भाव हैं ?

समाधान—गति, लेश्या, और असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण और सूक्ष्मत्व गुण सम्पूर्णतया विकार रूप परिणमन करते हैं। इस कारण वह औदयिक भाव हैं। श्रद्धा, गुण, चारित्र गुण, ज्ञान गुण, दर्शन गुण, और वीर्य गुण, क्षायिक भाव से परिणमन करते हैं। तेरहवें गुणस्थान मे उपशम भाव तथा क्षयोपशम भाव नहीं हैं। जीवत्व और भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति

रूप हैं। क्योंकि एक गुण की एक समय में दो अवस्था रूप परिणति नहीं होती है। इसलिए व्यक्त रूप नहीं हैं।

इति संयोगी केवली गुणस्थान समाप्त

चौदहवां अयोग केवली गुणस्थान

अयोगी जिन को मात्र एक आयु प्राण है। शरीर श्वांसोच्छ्वास प्राण का तेरहवें गुणस्थान के अन्त में ही नाश हो जाता है। वज्रऋर्षभनाराच संहनन का भी तेरहवें गुणस्थान के अन्त में शरीर के साथ में अभाव हो जाता है। अयोगी जिन के छः पर्याप्ति होती हैं। ६ प्रर्याप्ति होने का यह कारण है कि पूर्व से आई हुई पर्याप्तियाँ उसी रूप में स्थित रहित हैं। इसलिये उपचार से छः पर्याप्ति कही गई हैं, किन्तु यहाँ पर पर्याप्ति जनित कोई कार्य नहीं होता है। अतः आयु नामक एक ही प्राण होता है।

शंका—एक आयु प्राण के होने का क्या कारण है?

समाधान—ज्ञानावरण के क्षयोपशम रूप पाँच इन्द्रिय प्राण तो अयोगी केवली के है नहीं! क्योंकि ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर क्षयोपशम का अभाव पाया जाता है। इसी प्रकार श्वांसोच्छ्वास, भाषा और मन प्राण भी अयोगी केवली के नहीं हैं। क्योंकि

पर्याप्ति जनित प्राण संज्ञा वाली शक्ति का उनमें अभाव होता है। उसी प्रकार अयोगी केवली के काय बल नाम का भी प्राण नहीं होता है। क्योंकि अयोग केवली के नाम कर्म के उदय जनित कर्म और नोकर्म के आगमन का कारण जो शरीर है, इसका अभाव रहता है। इसलिए अयोग केवली के एक आयु प्राण ही होता है। ऐसा समझना चाहिए। (धवल ग्रन्थ नं० २ पृष्ठ ४४६)

शंका—अयोगी जिन आहारक हैं या अनाहारक हैं?

समाधान—चौदहवें गुणस्थान में शरीर निस्पादन के लिये आने वाली नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं का अभाव हो जाने से अयोगी जिन अनाहारक हैं। (धवल ग्रन्थ नं० २ पृष्ठ ८५४)

सयोगी जिन किसी भी कर्म का क्षय नहीं करते हैं। इसके पीछे विहार करके और क्रम से योग निरोध करके वे अयोग केवली होते हैं। वे भी अपने काल के द्विचरम समय में ७२ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। इसके पीछे अपने काल के अन्तिम समय में दोनों वेदनीय में से उदय हुए कोई एक वेदनीय, मनुष्य आयु, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, त्रस बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थंकर और उच्च गोत्र इन १३ प्रकृतियों का क्षय करते हैं। अथवा मनुष्य

गत्यानुपूर्वी के साथ अयोगी केवली के द्विचरम समय में ७३ प्रकृतियों का और चरम समय में १२ प्रकृतियों का क्षय कर उसी समय में संसार का व्यय और सिद्ध पद की उत्पत्ति होती है। (धवल ग्रन्थ नं० १ पृष्ठ २२३)।

शंका—चौदहवें गुणस्थान में बन्ध कितनी प्रकृतियों का होता है ?

समाधान—तेरहवें गुणस्थान में जो एक सातावेदनीय का बन्ध होता था, उसकी उसी गुणस्थान में व्युच्छिति होने से यहाँ किसी का भी बन्ध नहीं होता।

शंका—चौदहवे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है।

माधान—तेरहवें गुणस्थान में जो ४२ प्रकृतियों का उदय होता था, उनमें से व्युच्छिति; वेदनीय १, वज्र ऋषभ नाराच संहनन १, निर्माण १, स्थिर १, अस्थिर १, शुभ १, अशुभ १, सुस्वर १, दुःस्वर १, प्रशस्त विहायो गति १, अप्रशस्त विहायो गति १, औदारिक शरीर १, औदारिक अंगोपांग १, तैजसशरीर १, कार्माण शरीर, १, न्यग्रोध परिमन्डल संस्थान १, स्वाति संस्थान १, कुब्जक संस्थान १, वामन संस्थान १, हुंडक संस्थान १, स्पर्श १, रस १, गन्ध १, वर्ण १, अगुरू

लघु १, उपघात १, परघात १, उच्छ्वास १, और प्रत्येक १ यह मिल कर ३० प्रकृतियों के घटाने पर शेष १२ प्रकृतियों का अर्थात् वेदनीय, मनुष्य गति, मनुष्य आयु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्च गोत्र का उदय रहता है।

शंका—चौदहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों की सत्ता रहती है ?

समाधान—तेरहवें गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी ८५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है। परन्तु द्विचरम समय में ७२ प्रकृतियों की और अन्तिम समय में १३ प्रकृतियों की सत्ता नष्ट हो जाती है। तब कर्म का अत्यन्त अभाव हो जाने से अर्हन्त परमेष्ठी में सिद्ध पर्याय प्रगट हो जाती है।

शंका—चौदहवें गुणस्थान में पाँच भावों में से कौन से भाव हैं ?

समाधान—गति, तथा असिद्धत्व नाम के औदयिक भाव हैं। अर्थात् प्रदेशत्व गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरुलघु गुण तथा सूक्ष्मत्व गुण, सम्पूर्णतया विकारी परिणमन करते हैं। इस कारण ये औदयिक भाव हैं। श्रद्धागुण, चारित्र गुण, ज्ञान गुण, दर्शनगुण,

वीर्य गुण, क्रिया गुण, और योग गुण, क्षायिक भाव से परिणमन करते हैं। यहाँ उपशम भाव तथा क्षयोपशम भाव नहीं हैं। जीवत्व और भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप हैं। शक्ति का नाश कभी होता ही नहीं है।

शंका—सिद्ध परमात्मा में पाँच भावों में से कौनसा भाव है?

समाधान—सिद्ध परमात्मा में औदयिक भाव नहीं है। उपशम भाव नहीं है। क्षयोपशम भाव नहीं है। परन्तु श्रद्धा गुण, चारित्र गुण, ज्ञान गुण, दर्शन गुण, सुख गुण, वीर्य गुण, क्रिया गुण, योग गुण, अव्याबाध गुण, अवगाहना गुण, अगुरूलघु गुण, सूक्ष्मत्व गुण, प्रदेशत्व आदि गुण, क्षायिक भाव से परिणमन करते है। जीवत्व तथा भव्यत्व नाम के पारिणामिक भाव शक्ति रूप है।

इति गुणस्थान शास्त्र समाप्त।

शान्ति शान्तिः शान्तिः

श्री जिनेन्द्रकुमार जैन द्वारा जनता प्रेस, प्रतापपुरा, आगरा में मुद्रित।